युग-छाया

(युग-प्रतीक एकांकी नाटकों का संकलन)

सम्पादक

शिवदानसिंह चौहान

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

सूची

श्री विक्रमादित्य

डॉक्टर रामकुमार वर्मा

पात्र

श्री विक्रमादित्य—शकारि अवन्तिनाथ

विभावरी (भूमक) छद्मवेशी शक कुमार

पुष्पिका—उज्जयिनी-निवासिनी

उद्यान-रक्षिका, प्रहरी, वधिक

स्थान—उज्जयिनी   काल—सन् ५७ ई० पू०

श्री विक्रमादित्य

[श्री विक्रमादित्य (आयु २६ वर्ष) की न्याय-सभा का बाहरी कक्ष। एक सिहासन है, जिसके दोनो ओर सिह की दो विशाल प्रतिमाएँ हैं। सिहासन के पीछे एक मेहराब है, जिसके मध्य मे सूर्य-मडल है। शिल्प-कला से सजाये गए पत्थरो पर बेल-बूटेदार आकृतियाँ है, जिनमे कमल और उसके चारो ओर मृणाल की जाली है। फर्श भी रगीन पत्थरो का है और उसमे सरोवर की लहरो का आभास है। मेहराब से हटकर एक वातायन है, जिससे कुछ दूर पर शिप्रा का प्रवाह दीख रहा है। कमरे मे सुगन्धित द्रव्य का धूम है और चारो ओर रगीन प्रकाश की शलाकाएँ है। द्वार के समीप काठ का एक त्रिभुज है, जिसमे एक घण्टा लटक रहा है।

सिहासन पर श्री विक्रमादित्य आसीन है। देवतुल्य शरीर, घुटने तक लम्बी बाँह, प्रशस्त ललाट, चौडा और ऊँचा वक्षःस्थल, कटि प्रदेश पुष्ट, जैसे 'विश्वकर्मा ने अपने चक्र-यन्त्र पर चढाकर उनकी आकृति और शोभा को और भी चमका दिया है।' उनकी कमर में अपराजित खड्ग कसा हुआ है, जो 'उनके पुरुषार्थ रूपी सागर की उच्छल तरग' है। वह राजसी वस्त्र पहने हुए हैं। सिर पर रत्न-जटित मुकुट है।

मञ्च की सीढियो पर दाहिनी ओर एक युवती विभावरी (आयु २२ वर्ष) खडी है। मोतियो से परिपूर्ण सीमन्त और वेणी मे बन्धूक-पुष्प। कन्धो पर हरा उत्तरीय और कमर मे पीले रेशम का कटिबन्ध। हृदय में मोतियो की माला और पुष्पहार। उसका शेष शृङ्गार फूलो का ही है।

कक्ष मे इस समय केवल ये दोनो ही है। गभीर घोष से श्री विक्रमादित्य मौन भग करते हैं।]

विक्रमादित्य—आश्चय है, उज्जयिनी मे तुम्हारा अपमान हुआ ।

विभावरी—सम्राट्, उस अपमान की यन्त्रणा से आज दिन-भर रुदन करने के कारण मेरे कण्ठ की विकृति हो गई है ।

विक्रमादित्य—आर्य-नारियाँ रुदन नहीं करती । तुम्हारा नाम क्या है देवी ?

विभावरी—विभावरी, सम्राट् !

विक्रमादित्य—विभावरी, कहाँ की निवासिनी हो ?

विभावरी—विदिशा मे मेरा निवास है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—उज्जयिनी मे कब मे निवास कर रही हो ?

विभावरी—शरद्-पूर्णिमा के पर्व से । एक मास से कुछ ही अधिक समय हुआ ।

विक्रमादित्य—यहाँ तुम आई किस लिए थी ?

विभावरी—पुण्यतीर्था उज्जयिनी मे शिप्रा-स्नान के लिए ।

विक्रमादित्य—कितने दिनो से शिप्रा-स्नान कर रही हो ?

विभावरी—पिछले तीन वर्षों से, सम्राट् !

विक्रमादित्य—प्रत्येक वर्ष तुम यहाँ एक मास से अधिक ठहरती हो ?

विभावरी—नही सम्राट्, जब से आपका शासन हुआ है तब से यहाँ अधिक ठहरने लगी हूँ ।

विक्रमादित्य—क्यो ?

विभावरी—सम्राट्, आपके शासन मे उज्जयिनी की पवित्रता नक्षत्रो की पवित्रता के समान है । यहाँ चरणो के भैरव राग मे पुष्पो ने अपनी पंखुड़ियाँ खोलना सीखा है । जो नगरी अपने वैभव के स्तूपो मे अपने हाथ फैलाकर आपके चरणो की वन्दना कर रही है, वह नगरी मेरे लिए इतना आकर्षण क्यो न रखे सम्राट ?

विक्रमादित्य—इसे मै कैसे सत्य समझूँ जब विभावरी-जैसी आर्य-नारी अभियोगिनी के रूप मे मेरे सामने उपस्थित है ?

विभावरी—यह मेरा भाग्य-दोष है, सम्राट् ! सूर्य का आलोक कण-कण को प्रकाशित करता है, किन्तु पहाड़ की कन्दरा मे अन्धकार ही रहता है। यह सूर्य का दोष नही है प्रभो, यह कन्दरा का दोष है जो पत्थरो को तोड़कर उनमें छिपकर बैठ गई है।

विक्रमादित्य—यदि तुम ऐसा समझती हो देवी, तो अभियोगिनी बनकर मेरे सामने क्यो खडी हो ? यदि यह स्वयं तुम्हारा दोप है तो तुमने राज-मर्यादा की शान्ति मे बाधा क्यो डाली ? उस दोप के दण्ड को सहन करने की शक्ति तुममे होनी चाहिए।

विभावरी—सम्राट्, यदि मै दण्ड सहन कर लूँगी तो इस दण्ड का द्वार भविष्य मे अन्य स्त्रियो के लिए भी खुल जायगा। आज मै अपमानित हुई हूँ, यदि इसकी सूचना मै आपके बाहु-बल को न दूँ तो कल दूसरी स्त्री भी अपमानित हो सकती है।

विक्रमादित्य—तुमसे पहले तो कोई स्त्री मेरे राज्य मे अपमानित नही हुई।

विभावरी—यह आपके राज्य-शासन का गौरव है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—(दृढता से) चुप रहो विभावरी, मै ऐसे छद्मवेशी शब्द सुनना नही चाहता। ये मेरी यन्त्रणा को अधिक तीव्र करते है। मै जानना चाहता हूँ, तुम्हारा अभियोग क्या है ?

विभावरी—सम्राट्, लज्जा मेरे शब्दो को रोक रही है।

विक्रमादित्य—मुझे आश्चर्य हो रहा है, तुम आर्य-नारी किस प्रकार हो ? तुमने इस अपमान पर आज दिन-भर रुदन किया, जो आर्य-नारी की मर्यादा के प्रतिकूल है। फिर उस अपमान

के कहने मे तुम्हे लज्जा हो रही है । आर्य-नारियाँ अपना अपमान ज्वालामय शब्दो मे कहती है, लज्जा के स्वरो मे नहीं ।

विभावरी—मै बहुत दुखी हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तब तो तुम्हे और भी निर्भीक होना चाहिए। भारत की दु खिनी नारी क्रान्ति की ज्वाला है, उसे कोई रोक नहीं सकता । वह उठती है तो सुगन्धिमय धूम की भाँति, और आकाश तक उसकी उदारता फैल जाती है; वह गिरती है तो बिजली की भाँति, और उससे पाताल का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है ।

विभावरी—सत्य है सम्राट् !

विक्रमादित्य—फिर तुमने यह याचना की थी कि तुम्हारा अभियोग न्याय-सभा के बाहरी कक्ष मे एकान्त मे सुना जाय । यह याचना भी तुम्हारी स्वीकार हुई। मैने अपनी सभा के सदस्यो और मन्त्रियो को यहाँ से हटा दिया। इस समय हम लोग एकान्त मे है। तुम निर्भीक होकर अपना अभियोग मुझे सुना सकती हो।

विभावरी—(हाथ जोड़कर) मै सम्राट् की कृतज्ञ हूँ ।

विक्रमादित्य—कृतज्ञ होने की बात नहीं है। सम्राट् प्रजा का पिता है। यदि आवश्यकता होगी तो मै इसी स्थल पर तुम्हारे अभियुक्त को दण्ड भी दे सकूँगा।

विभावरी—यह आपकी कृपा है प्रभो !

विक्रमादित्य—अपना अभियोग स्पष्ट करो । किसमें इतनी शक्ति है जो उज्जयिनी में नारी का अपमान करे ?

विभावरी—सम्राट् , आज प्रात काल उषा-बेला में मैं इसी शिप्रा (वातायन की ओर संकेत) के किनारे वायु-विहार के लिए गई थी। वहाँ पुष्पराग-उद्यान की सुगन्धि ने मुझे आकर्षित

किया और मैंने उसमे प्रवेश किया। शीतल समीरण बह रहा था, अनेक भाँति के पुष्प खिले हुए थे

विक्रमादित्य—(बीच मे ही) मै इस समय काव्य नहीं सुनना चाहता, अभियोग सुनना चाहता हूँ।

विभावरी—क्षमा चाहती हूँ सम्राट्, मै सक्षेप मे ही कहूँगी। पुष्पराग-उद्यान मे पुष्पो की विविधता देखकर मेरे मन में इच्छा हुई कि मै सूर्य भगवान् की पूजा के निमित्त कुछ पुष्प-चयन कर लूँ। जिस समय मै पुष्प-चयन कर रही थी उसी समय एक दूसरी स्त्री मेरे समीप आई। उसने प्रेम से मेरी ओर देखकर निवेदन किया, "क्या मै आपकी सहायता कर सकती हूँ ?" उसका प्रेम-भाव देखकर मैंने उसकी सहायता स्वीकार कर ली। पुष्प-चयन के उपरान्त उसने मेरी वेणी मे पुष्प गूँथने की इच्छा प्रकट की। सम्राट्, सौन्दर्य-प्रिय होने के कारण मैंने यह भी स्वीकार किया। जिस समय मेरी वेणी मे वह पुष्प गूँथ रही थी, उस समय मेरे कण्ठ मे उसका स्पर्श अस्वाभाविक ज्ञात हुआ।

विक्रमादित्य—(चौंककर) अस्वाभाविक ? (सिंहासन से उतर पड़ते हैं।)

विभावरी—सम्राट, उसके स्पर्श से मुझे पुरुष स्पर्श का सकेत मिला।

विक्रमादित्य—(स्तभित होकर) पुरुष स्पर्श ? तो क्या वह नारी-वेश मे पुरुष था ?

विभावरी—मै यही सोचती हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तुमने उसी समय अपने अपमान का प्रतिकार किया ?

विभावरी—सम्राट्, मुझे भय था मै कहीं अधिक अपमानित न हो जाऊँ।

विक्रमादित्य—तुम्हारे पास कोई शस्त्र था ?

विभावरी—हाँ सम्राट्, मेरे पास शस्त्र था। वह अब भी है। देखिए, यह दन्तिका। (कटिबन्ध से दन्तिका निकालकर दिखलाती है।)

विक्रमादित्य—तुमने इसका प्रयोग किया ?

विभावरी—सम्राट्, मुझे आपके न्याय में अधिक विश्वास है।

विक्रमादित्य—विभावरी, तुम आर्य-नारी हो। तुमने अपने कुल को कलंकित किया है। साथ ही मुझे भी, अपने सम्राट् को। तुम इस प्रकार अपमानित हो जाओ और शक-स्त्रियों की भाँति रोने लगो ? तुम्हें अपनी असमर्थता पर लज्जा नहीं आई ? तुम्हारी माता को आत्म-हत्या करनी चाहिए। तुम्हारे पिता को देश से भाग जाना चाहिए। शक्ति-हीना नारी, भारत के भविष्य की संरक्षिका को अपमान का प्रतिकार करना भी न आया ? (अशान्ति से शीघ्र गति में टहलने लगते हैं।)

विभावरी—सम्राट्, मुझे क्षमा कीजिए। विदिशा में रहने वाली नारी को अभी उज्जयिनी की नारी से बहुत-कुछ सीखना है। आपके व्यक्तित्व के प्रभाव से तो उज्जयिनी की नारी दुर्गा और सरस्वती दोनों का ही रूप धारण कर सकती है।

विक्रमादित्य—(घृणा से) अयोग्य नारी, इस तिल की ओट में तुम पर्वत को नहीं छिपा सकती। यह कारण तुम्हारी असमर्थता की रक्षा नहीं करेगा।

विभावरी—(हाथ जोड़कर) सम्राट्, मैं भी दण्ड की पात्री हूँ।

विक्रमादित्य—निस्सन्देह, नारी-अपमान के लिए मैं अभियुक्त को निर्वासित तो करूँगा ही, साथ-ही-साथ तुम्हें भी साधना की अग्नि में तपकर सच्ची नारी बनना होगा।

विभावरी—मै दण्ड सहन करने के लिए प्रस्तुत हूँ, प्रभो !

विक्रमादित्य—और तुम्हारा अभियुक्त कहाँ है ?

विभावरी—मै उसे पुष्पराग-उद्यान की द्वार-रक्षिका से बन्दी कराकर ले आई हूँ। वह इस समय द्वार-रक्षिका के साथ बाहर है।

विक्रमादित्य—(अशान्त होकर) उज्जयिनी मे कभी ऐसा अभियोग मेरे सामने उपस्थित नही हुआ। विभावरी, तुमने आज मुझे यह सोचने के लिए बाध्य किया है कि इतने युद्ध करने के उपरान्त, इतने शत्रुओ को मालवा, सौराष्ट्र और गुर्जर से निर्वासित करने के उपरान्त, भी मै उज्जयिनी की सामाजिक व्यवस्था ठीक करने मे असमर्थ रहा। आज भी उज्जयिनी मे नारी अपमानित हो सकती है !

विभावरी—हाँ, साम्राट् !

विक्रमादित्य—(तीव्र स्वर मे) विभावरी !

विभावरी—(विह्वल होकर) सम्राट्, क्षमा हो। जिस नगरी की वाणी ने ही शिप्रा का रूप धारण कर लिया हो वहाँ मेरी वाणी मे यदि कुछ भूल हो तो क्षमा कीजिए, किन्तु अपनी आत्मा का चीत्कार मै किन शब्दो मे व्यक्त करूँ, प्रभो ? मै लाञ्छित हुई हूँ, मेरे आत्म-सम्मान की अवहेलना

विक्रमादित्य—(रोककर) बस, अब मै अधिक नही सुन सकूँगा। तुम्हारे अभियोग ने मेरे पराक्रम की सहस्र भुजाओ को शक्तिहीन सिद्ध कर दिया है। मै अब तक अपनी शक्ति का विश्वासी था। आज वह विश्वास तुम्हारे अभियोग मे समाप्त हो रहा है। मेरे राज्य मे नारी का अपमान हो, यह मेरे लिए अपमान की बात है।

विभावरी—आप सम्राट्-श्रेष्ठ है, प्रभो !

विक्रमादित्य—चुप रहो विभावरी, इन शब्दो से तुम मुझे

पीडा पहुँचा रही हो। मैंने विक्रमादित्य का विरुद धारण किया था। क्या मेरे इस साहस की भावना पर तुम्हारा अभियोग हँस नही रहा है? मै उस विरुद का परित्याग करूँगा। तुमने विक्रम की ऐसी पताका भी कही देखी है जो अन्याय और अव्यवस्था के दण्ड मे सजी हो? तुम ऐसे सूर्य की कल्पना कर सकती हो जिसकी किरणो से अन्धकार निकलता हो? विक्रमादित्य अन्याय और अव्यवस्था का प्रतीक हो, यह असम्भव है, यह असम्भव है।

विभावरी—सम्राट् शान्त हो।

विक्रमादित्य—अयोग्य व्यक्ति कभी शान्त नही हो सकता। मै अयोग्य हूँ। कालिदास ने व्यर्थ ही मेरी प्रशसा की है। मुझे पहचानने मे महाकवि ने भी भूल की।

विभावरी—नही प्रभो, मैंने आपको कष्ट पहुँचाने मे भूल की है।

विक्रमादित्य—नही, मै विक्रमादित्य नाम का परित्याग करूँगा। मेरे लिए केवल यही मार्ग है, केवल यही। किन्तु इसके पूर्व मै नारी के सम्मान की पूर्ण व्यवस्था कर जाऊँगा। हाँ, तुम्हारा अपराधी बाहर है। मै उस नर-पिशाच को देखना चाहता हूँ जो अपने छद्मवेश में नारियो का अपमान करता फिरता है; जो पुरुष होकर अपने पुरुषत्व को नारी के वस्त्रों में छिपाये हुए है; जिसने विक्रमादित्य की सत्ता को विलासियो की शृङ्गार-शाला समझ रखा है। (द्वार के समीप पहुँचकर घटे पर चोट करते हैं, फिर लौटकर विभावरी से) तुम्हे मेरे न्याय मे अधिक विश्वास है! मै आज एकाकी न्याय करूँगा। न्याय-सभा का सारा अधिकार अपने बाहु-बल में केन्द्रित करके अपराधी को कठोर दण्ड दूँगा। (प्रहरी का प्रवेश; वह अपना भाला झुकाकर प्रणाम करता है।)

विक्रमादित्य—प्रहरी, बाहर जो बन्दिनी द्वार-रक्षिका के अधिकार मे है, उसे यहाँ उपस्थित होने की आज्ञा सुनाओ।

प्रहरी—जो आज्ञा (प्रणाम करके प्रस्थान ।)

विक्रमादित्य—(विभावरी से) तुम मेरा न्याय देखना चाहती हो ? किन्तु सुनो विभावरी, मै ऐसी नारी से घृणा करता हूँ जो अपना सम्मान स्वय सुरक्षित नही रख सकती । नदी पहाड़ से कहे कि तुम मेरे लिए किनारा बना दो, बिजली बादल से कहे कि मुझे तड़पना सिखला दो और नारी राजा से कहे कि मेरा न्याय कर दो। नारी, भारतवर्ष को ससार मे लज्जित होने से बचाओ, विदेशियो से पद-दलित होने पर भी देश की मर्यादा सुरक्षित रहने दो।

[द्वार-रक्षिका का अभियुक्त (आयु २४ वर्ष) के साथ प्रवेश। द्वार-रक्षिका श्वेत वस्त्र धारण किये हुए है । काले रेशम का कटिबन्ध । कबरी मे पुष्प-शृङ्गार और हाथ मे शूल । अभियुक्त पाटल रग का उत्तरीय और नीले रंग का कटिबन्ध पहने है । गले मे स्वर्ण-माला । केशो मे कुन्द-पुष्प । माथे मे स्वस्तिक-तिलक । हाथो मे पुष्प-वलय और पैरों मे नूपुर धारण किये हुए है । दोनो का अभिवादन । द्वार-रक्षिका अभियुक्त को सामने उपस्थित करके द्वार पर जाकर खड़ी हो जाती है।]

विक्रमादित्य—(द्वार-रक्षिका से) तुम बाहर मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करो ।

द्वार-रक्षिका—(सिर झुकाकर) जो आज्ञा । (प्रस्थान ।)

विक्रमादित्य—(अभियुक्त को गहरी दृष्टि से देखकर विभावरी से) यही तुम्हारा अभियुक्त है ?

विभावरी—(उद्वेग से) सम्राट्, यही अभियुक्त है । इसी ने मेरा अपमान किया है, यही वह दुष्ट है, यही वह छद्मवेशी है जिसने..

विक्रमादित्य—(हाथ बढाकर) रुको विभावरी, तुम मेरे न्याय-

कक्ष मे हो । (अभियुक्त से) अभियुक्त, तुम विक्रमादित्य की परीक्षा लेना चाहते हो कि वह अपनी व्यवस्था मे सतर्क है या नही ? छद्मवेशी अभियुक्त, तुम नारी-वेश मे पुरुपत्व का अपमान और नारीत्व की अवहेलना करने वाले कौन हो ?

अभियुक्त—(हिचकते हुए) सम्राट् !

विक्रमादित्य—(तीव्रता से) तुम्हारा नाम क्या है ?

अभियुक्त—(रुकते हुए शब्दो मे) सम्राट्, मै मै पुरुप हूँ ।

विक्रमादित्य—मै जानता हूँ कि तुम पुरुप हो, पुरुपत्व को लज्जित करने वाले पुरुप । तुम्हारा नाम क्या है ? विक्रमादित्य के सामने तुम असत्य भापण नही कर सकोगे । मेरे अधिकार मे अग्नि है, (तलवार पर हाथ रखकर) 'अपराजित' की तीक्ष्ण धार है और बधिक का तीक्ष्ण कृपाण । सत्य और धर्म के सोपान पर सुसज्जित पवित्र न्याय के सामने अपने नाम के अक्षर दुहराओ

अभियुक्त—(विह्वल होकर) सम्राट् सम्राट् मुझे क्षमा करें मै स्त्री हूँ ।

विक्रमादित्य—तुम स्त्री हो ? यह तो सभी देखने वाले जान सकते है, किन्तु मै तुम्हारे पुरुपत्व की परिभापा जानना चाहता हूँ ।

अभियुक्त—सम्राट्, मै स्त्री हूँ । मेरा नाम पुष्पिका है ।

विभावरी—(तीव्रता से) यह झूठ बोलता है, इसका यह नाम नही है ।

विक्रमादित्य—(मुस्कराकर) नाम तो बहुत सुन्दर है, किन्तु तुम्हारा वास्तविक नाम क्या है ? तुम विक्रमादित्य के न्याय के सामने हो, असत्य भापण नही करोगे ।

अभियुक्त—सम्राट, मै क्या कहूँ मेरी समझ मे नही आता .. हॉ, मै पुरुष हूँ ।

विक्रमादित्य—दण्ड के भय से उद्भ्रान्त मत बनो अभि-युक्त! भगवान् महाकालेश्वर की आन पर तुम असत्य भाषण नहीं करोगे।

अभियुक्त—सम्राट् के सामने यह साहस किसी का नहीं हो सकता।

विक्रमादित्य—अभियोग कहता है कि तुम पुरुष हो। तुमने विभावरी का अपमान किया है। क्या यह सत्य है?

अभियुक्त—हाँ सम्राट्, यह सत्य है। (रुककर) नहीं-नहीं, यह सत्य नहीं है।

विक्रमादित्य—(तीक्ष्णता से) स्थिर रहो अभियुक्त, तुम कहाँ के निवासी हो?

अभियुक्त—सम्राट्, मैं उज्जयिनी में निवास करती हूँ।

विक्रमादित्य—(दृढता से) तो तुम स्त्री हो? अभियुक्त, क[illegible] भाषण करने पर कठोर दण्ड मिलेगा। अपनी वास्त-विकता स्वीकार करो।

अभियुक्त—सम्राट्, मेरा नाम पुष्पिका है। मैं उज्जयिनी की निवासिनी हूँ।

विक्रमादित्य—इसका प्रमाण?

अभियुक्त—मैं सम्राट् के राज्यारोहण के समय उपस्थित थी। उस समय सम्राट् ने उज्जयिनी की प्रत्येक नारी को जो स्वर्ण-मुद्राएँ दी थीं, वे मेरे कण्ठहार में अब तक सुसज्जित हैं। देखिए। (अपना कण्ठहार दिखलाती है।)

विक्रमादित्य—किन्तु वे मुद्राएँ तुम्हारे द्वारा चुराई भी तो जा सकती हैं?

अभियुक्त—सम्राट्, उज्जयिनी की प्रत्येक नारी आपकी मुद्रा को गौरव का चिह्न समझती है। वह उसे चोरी नहीं होने दे सकती और सम्राट्, उज्जयिनी में चोरों का निवास नहीं है।

विक्रमादित्य—मै यह बात सुनकर प्रसन्न हूँ, किन्तु तुम पर अभियोग है कि तुम पुरुष हो। क्या तुम पुरुष हो?

अभियुक्त—(दृढता से) सम्राट्, मै पुरुष नही हूँ। (विभावरी कॉप जाती है।)

विक्रमादित्य—विभावरी, तुम कॉप उठी, इतना क्रोध करने की आवश्यकता नही है। मै अभी निर्णय करता हूँ। (अभियुक्त से) अभियुक्त, क्या मै प्रहरी को आज्ञा दूँ कि वह तुम्हारा वेश-विन्यास परिवर्तित करे?

अभियुक्त—सम्राट्, उज्जयिनी की नारी को प्रहरी द्वारा अपमानित होने से रोकने की कृपा कीजिए।

विक्रमादित्य—क्या तुम पुरुष नही हो, अभियुक्त?

अभियुक्त—नही सम्राट्, मै वचन दे चुकी हूँ कि अपने सम्राट् के सामने असत्य भाषण नही करूँगी।

विक्रमादित्य—(विभावरी से) विभावरी, क्या तुम्हारे कहने से अभियुक्त स्वीकार करेगा कि वह पुरुष है?

विभावरी—(अभियुक्त की ओर दृढता से देखकर) अभियुक्त, तुम पुरुष हो, तुम्हारे स्पर्श में नारी का भाव नही था। तुमने मुझसे स्वीकार किया था कि तुम सम्राट् के सामने पुरुषत्व स्वीकार करोगे। मेरी लज्जा के लिए स्वीकार करो, अपने वचन की पूर्ति के लिए स्वीकार करो। (अभियुक्त मौन है) देखो अभियुक्त, तुम चुप क्यो हो? तुम स्वीकार क्यो नही करते?

विक्रमादित्य—(विभावरी से) तुम्हारा कथन भी रहस्यपूर्ण है, विभावरी!

विभावरी—कोई रहस्य नही सम्राट्! (अभियुक्त से) अभियुक्त, मैं निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि तुम पुरुष हो। मेरी ओर देखकर कहो कि मै पुरुष हूँ।

अभियुक्त—(विभावरी की ओर देखकर) अच्छा तो मै पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य—(क्रुद्ध होकर 'अपराजित' म्यान से निकालकर) सावधान, तुम सत्य से खिलवाड़ कर रहे हो अभियुक्त ! राज-मर्यादा का अपमान करने के कारण तुम्हे कठोर दण्ड दिया जायगा। ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर तुम अजलि के जल से अपनी रक्षा करना चाहते हो (जोर से) प्रहरी !

अभियुक्त—(घुटने टेककर) सम्राट्, क्षमा करे। मै अपराधिनी हूँ। मै आपकी करुणा का दान चाहती हूँ। (प्रहरी का प्रवेश, वह प्रणाम करता है।)

विक्रमादित्य—(अभियुक्त से) तो तुम पुरुष नही हो। अभी विभावरी की ओर देखकर तुमने कहा कि मै पुरुप हूँ।

अभियुक्त—मै स्त्री हूँ। अपने सम्राट् के सामने असत्य भाषण नही कर सकती।

विक्रमादित्य—इसमें कुछ रहस्य है। अच्छा तुम स्त्री ही सही। (अकस्मात् दूसरी ओर नेपथ्य मे देखकर) ओह इतना भयानक सर्प (प्रहरी उस ओर दौड़ता है, अभियुक्ता भागकर सिहासन के पीछे छिप जाती हे।)

विक्रमादित्य—अभियुक्ता वास्तव मे स्त्री है; सर्प न होते हुए भी सर्प के नाम से वह विचलित हो गई। पुरुषो का यह लक्षण नहीं है। (विभावरी की ओर देखकर) तुम विचलित नही हुई ? (खड्ग म्यान मे रखते हुए)

विभावरी—मै साहसी हूँ, सम्राट् !

अभियुक्त—(आगे बढकर) सम्राट्, क्षमा-दान करे। विभावरी पुरुप है।

विक्रमादित्य—ओह, यह रहस्य है ! मै भी अनुमान करता हूँ, विभावरी पुरुप है।

विभावरी—पुष्पिके, तुमने विश्वासघात किया ! (अभियुक्त की ओर दृष्टि करके)

पुष्पिका—क्षमा हो राजकुमार, प्रयत्न करने पर भी मै सम्राट् के सामने असत्य भाषण नही कर सकी ।

विक्रमादित्य (साश्चर्य) राजकुमार !

पुष्पिका—सम्राट्, क्षमा की भिक्षा माँगते हुए निवेदन करती हूँ कि यह विभावरी शक राजकुमार क्षत्रप भूमक है ।

विक्रमादित्य—(आश्चर्य और क्रोध से) शक राजकुमार भूमक ! (तलवार पर हाथ रखते हुए) बोलो राजकुमार भूमक, तुम सौराष्ट्र के युद्ध मे कहाँ रहे ? क्या इसी वेश में विदिशा की नारियो के बीच छिपे हुए थे ? तुम विभावरी हो ? क्यो कायर राजकुमार ? तुम्हे अपनी माता का स्तन्य लज्जित करते हुए सकोच नही हुआ ? स्त्री-वेश में तुम्हे अपने पुरुषत्व को कलकित करते हुए क्षोभ नही हुआ ? और फिर तुम्ही अभियोग लाये थे ? स्वयं अपराधी होते हुए अभियोग लगाने का साहस ! राज-मर्यादा में तुम्हे असत्य का अभिनय आत्म-हत्या करने से अच्छा ज्ञात हुआ ? कायरता की प्रतिमूर्ति राजकुमार भूमक !

भूमक—मै कायर नही हूँ सम्राट् !

विक्रमादित्य—तुम कायर नही हो ? तुम इतने तुच्छ हो कि तुम्हे आर्य-नारी बनने की योग्यता भी नही आई ! आर्य-नारी ने रोदन किया! उसके कण्ठ की विकृति हुई ! अपना पुरुष-स्वर छिपाने के लिए कण्ठ की विकृति ! उसने अपमान सहा, शस्त्र का प्रयोग नही किया, वह सम्मान के प्रतिशोध मे सम्राट् के सामने अभियोगिनी बनी और उसे अभियोग के स्पष्ट करने मे लज्जा हुई ! ये सब क्या आर्य-नारियो के लक्षण है ? मुझे पहले ही सदेह होने लगा था । शको में आर्य-नारियो का धर्म पहचानने की क्षमता कहाँ ? तुम शक राजकुमार भूमक हो,

तुम इन बातों को क्या समझो ? तुम केवल स्त्री-वेश धारण करना जानते हो।

भूमक—सम्राट्, आप मेरा अपमान न कीजिए। स्त्री-वेश मैने अपनी इच्छा से धारण किया। मै कायर नही हूँ। यदि आपकी इच्छा युद्ध करने की है तो मेरे लिए भी एक तलवार लाने की आज्ञा दीजिए। मै जानता हूँ कि मै आप पर विजय प्राप्त नही कर सकता, किन्तु शक राजकुमार मरने से भी नही डरता।

विक्रमादित्य—(मुस्कराकर) मै यह सुनकर प्रसन्न हूँ। (घण्टे पर चोट करते है।) किन्तु विभावरी और भूमक में क्या अन्तर है, यह मै जानना चाहता हूँ। यह सब काण्ड रहस्य के रूप मे मेरे सामने क्यो उपस्थित किया गया ? स्त्री और पुरुष, फिर पुरुष और स्त्री। मेरे राज्य मे इस इन्द्रजाल के लिए स्थान नहीं है।

(प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—(प्रणाम करके) सम्राट्, कोई सर्प नही दीख पड़ा।

विक्रमादित्य—यह मै जानता हूँ। (विभावरी की ओर संकेत करते हुए) इस स्त्री को शस्त्रागार मे ले जाकर इसे सैनिक का वस्त्र-विन्यास दो और साथ ही इसकी रुचि के अनुसार एक तलवार भी।

प्रहरी—जो आज्ञा।

विक्रमादित्य—स्त्री-वेश मे मेरे समक्ष तुम अपने पुरुषत्व को अधिक देर तक लज्जित मत करो क्षत्रप-राजकुमार !

(भूमक का सैनिक के साथ प्रस्थान)

विक्रमादित्य—(घूमकर पुष्पिका से) पुष्पिके, जो पुरुष था वह स्त्री-रूप मे आया और जिसमें पुरुष की कल्पना थी वह स्त्री ही निकली। यह सब मेरे सामने किस षड्यंत्र का रूप है ?

पुष्पिका—सम्राट् क्षमा करें। यह मेरी व्यक्तिगत जीवन-कथा है। परिस्थितिवश मुझे यह कार्य करना पड़ा। मै लाचार थी।

विक्रमादित्य—तो तुम इस घटना-चक्र की प्रधान पात्री हो ?

पुष्पिका—सम्राट्, मै प्रधान पात्री नही हूँ।

विक्रमादित्य—तुम प्रधान पात्री नही हो ? तुमने यह क्यो कहा कि मै पुरुष हूँ ?

पुष्पिका—उपकार-ऋण से मुक्त होने के लिए, सम्राट्!

विक्रमादित्य—उपकार-ऋण ? किसके उपकार-ऋण से मुक्त होने के लिए ?

पुष्पिका—राजकुमार भूमक ने मेरे प्रति उपकार किया था।

विक्रमादित्य—कैसा उपकार ?

पुष्पिका—सम्राट्, मै उज्जयिनी की निवासिनी हूँ। दो वर्ष पूर्व में एक कार्य से गुर्जर चली गई थी। अकस्मात् शको ने गुर्जर पर आक्रमण किया। दुर्भाग्य से मै भी शको के हाथो मे पड़ गई। जब अन्य बन्दियो के साथ मै वध-स्थान को ले जाई जा रही थी, उस समय एकाएक इस शक राजकुमार ने आकर मेरी रक्षा की और मुझे स्वतन्त्र किया।

विक्रमादित्य—तुम पर ही यह कृपा क्यो की ?

पुष्पिका—मै नही जानती, सम्राट्!

विक्रमादित्य—सम्भवत तुम्हारे सौन्दर्य के आकर्षण ने उससे यह कार्य कराया हो।

पुष्पिका—जो भी हो, सम्राट्! किन्तु उसने मेरे आत्म-सम्मान पर आँच नही आने दी और साथ ही मुझे जीवन-दान दिया। सम्राट्, मुझे इतने बड़े उपकार का बदला देना था।

विक्रमादित्य—तो क्या उपकार का बदला तुम अन्याय-रूप से देती ?

पुष्पिका—क्षमा कीजिए, सम्राट्! राजकुमार भूमक ने इसी बात की याचना की थी।

विक्रमादित्य—और इस क्षत्रप-राजकुमार ने स्त्री-वेश क्यो धारण किया?

पुष्पिका—सम्राट्, जब आपने मालवा, गुर्जर और सौराष्ट्र से शको को निर्वासित किया तो मेरे ऊपर अनुग्रह रखने वाले क्षत्रप को गुर्जर छोड़ने मे कष्ट हुआ। उसने गुर्जर ही मे रहना निश्चय किया, किन्तु पुरुष-वेश मे रहना उसके जीवन के लिए सकट का कारण होता, इसलिए उसने स्त्री-वेश रखकर रहने मे ही अपनी कुशल समझी।

विक्रमादित्य—फिर वह गुर्जर ही मे क्यो नही रहा?

पुष्पिका—सम्राट्, दुर्भाग्य से गुर्जर मे लोगो की सदेह-दृष्टि उस पर पड ही गई। इस समय मुझे उज्जयिनी भी आना था। उसने मुझसे प्रार्थना की कि वह भी मेरे साथ उज्जयिनी चले। मैने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।

विक्रमादित्य—क्या तुम उससे प्रेम करती हो?

पुष्पिका—सम्राट्, उपकार का बदला देना प्रेम करना नही कहा जा सकता।

विक्रमादित्य—क्या वह तुमसे प्रेम करता है?

पुष्पिका—मै कह नही सकती, सम्राट्! किन्तु इस प्रकार के व्यवहार की मैने सदैव अवहेलना की है। इस समय अधिक-से-अधिक वह मेरा भाई कहा जा सकता है।

विक्रमादित्य—यह सुनकर मै प्रसन्न हूॅ, किन्तु छद्मवेश रखने का अपराध करके भी उस राजकुमार को उज्जयिनी मे आते हुए भय नही हुआ?

पुष्पिका—उसे मेरे आश्रय का सबसे बडा बल था, सम्राट्! वह समझता था कि मै उसकी पूर्ण रक्षा कर सकूॅगी।

विक्रमादित्य—जो तुम राज्य के समक्ष अपराधिनी होते हुए भी उसकी रक्षा नहीं कर सकी ?

पुष्पिका—आप रक्षा कर सकते है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तुम जानती हो पुष्पिके, शको को मै एक ही दण्ड दिया करता हूँ और वह है प्राण-दण्ड। किन्तु खेद है कि युद्ध मे इस क्षत्रप ने मेरा सामना नहीं किया। फिर भी इसमे उसके दण्ड की व्यवस्था मे किसी प्रकार की बाधा नही पहुँचती। अभी एक बात तुम्हे और स्पष्ट करनी है। वह यह कि स्वयं छद्मवेश मे उपस्थित होकर और तुम पर अभियोग लगाकर उसने अपने किस कार्य की पूर्ति करनी चाही ?

पुष्पिका—सम्राट्, कुछ ही दिनो मे यहाँ उस आपके आतक और मर्यादापूर्ण शासन का ज्ञान हो गया। उसे भय था कि वह किसी दिन भी न्याय-सभा के सामने उपस्थित कर दिया जायगा। अत उसे उज्जयिनी की प्रत्येक दिशा मे सम्राट् विक्रमादित्य का कृपाण दीख पड़ने लगा। उसने निश्चय किया कि वह शीघ्र ही कपिशा चला जायगा, किन्तु मार्ग मे उसे प्राणो का भय था, इसलिए उसने सैनिको के सरक्षण मे जाना ही उचित समझा। इसी बात के लिए उसे इस अभियोग की कल्पना करनी पड़ी।

विक्रमादित्य—(सिर हिलाकर) ठीक।

पुष्पिका—और सम्राट्, राज्य का यह नियम तो आपने निर्धारित कर दिया है कि नारी के अपमान का दण्ड देश-निर्वासन है। मै उस दण्ड के अनुसार निर्वासित होती, क्योंकि मैं स्वीकार करती कि मै पुरुष हूँ। मेरे दण्डित होने पर वह विभावरी-रूप मे आपसे यह प्रार्थना भी करता कि वह स्वयं पदाघात कर मुझे राज्य की सीमा से बाहर करता। इसलिए वह भी मेरे साथ-ही-साथ सैनिको के सरक्षण मे सीमा तक पहुँच

जाता और सीमा पर पहुँचकर वह आपके राज्य से निकल भागता।

विक्रमादित्य—यह रहस्य है!

पुष्पिका—यही कारण है कि उसने मेरी आँखों में आँखें डालकर मुझसे अनुरोध किया था कि मैं आपके सामने यह स्वीकार कर लूँ कि मैं पुरुष हूँ।

विक्रमादित्य—किन्तु, इससे अच्छा क्या यह न होता कि वह स्वयं किसी स्त्री को अपमानित करके निर्वासन का दण्ड प्राप्त करता?

पुष्पिका—सत्य है सम्राट्, किन्तु आपसे प्राण-दान पाकर भी उसे भय था कि वह मार्ग ही में किसी सैनिक द्वारा न मार दिया जाय।

विक्रमादित्य—तो इस अभियोग में तुम तो निर्वासित हो ही जातीं।

पुष्पिका—सम्राट्, एक उपकारी के लिए मैं यह भी करती, किन्तु बाद में मैं पुनः उज्जयिनी लौट आती, आपकी मुद्राओं से सुसज्जित अपना कण्ठहार दिखलाकर।

विक्रमादित्य—तो तुमने अपराधी को छिपाकर और उसकी कूटनीति में भाग लेकर राज-द्रोह किया है। तुम दण्ड की अधिकारिणी हो।

पुष्पिका—सम्राट्, मैं दण्डित होने को प्रस्तुत हूँ, किन्तु अपने ऊपर अनन्त उपकार करने वाले शक राजकुमार की केवल एक इच्छा की पूर्ति करना मैंने अपना धर्म समझा।

विक्रमादित्य—किन्तु तुम जानती हो कि शकों और आर्यों का परस्पर क्या सम्बन्ध है? शकों ने आर्यों पर कितने अत्याचार किये हैं? उन्होंने ब्राह्मणों का वध किया है और वर्णाश्रम धर्म को जड़-मूल से उखाड़ने की चेष्टा की है। क्या शहानु-

शाही क्षत्रपो के शासन से तुम अपरिचित हो ?

पुष्पिका—नही सम्राट्, मुझे शको के अत्याचार की कथा ज्ञात है, किन्तु शक राजकुमार भूमक बहुत दयावान् है। वह कोमल-हृदय है, वह न्यायी है; अन्यथा वह मुझे मुक्त क्यो करता ? वह मेरे सम्मान की रक्षा क्यो करता ? वह जाति से शक है, किन्तु अपने विश्वास से वह पूर्ण आर्य है। जैन धर्म मे उसका पूर्ण विश्वास है। वह हिसा का विरोधी है, वह शक होकर भी शाकाहारी है।

विक्रमादित्य—तुम इस वक्तव्य से उसे निरपराध सिद्ध नही कर सकती। यदि आर्य-नारी की रक्षा करने के कारण उसे क्षमा भी कर दूं तो कपटपूर्ण अभियोग के लिए उसे दण्डित तो करूँगा ही, और साथ ही तुम्हे भी।

पुष्पिका—सम्राट्, मुझे दण्ड दीजिए, किन्तु मुझ पर उपकार करने वाले क्षत्रप-राजकुमार को क्षमा कर दीजिए।

विक्रमादित्य—वह शक-क्षत्रप होने के कारण ही दण्ड का अधिकारी है। शासन का न्याय शक-क्षत्रप को शक्तिशाली नही रहने देगा। शको ने जिस प्रकार आर्य-सस्कृति को कुचलने की चेष्टा की है उसके लिए उन्हे अनेक परम्पराओं तक प्रायश्चित की अग्नि मे जलना होगा। फिर विक्रमादित्य के सामने आर्य-धर्म का विद्रोही ससार का सबसे बड़ा अपराधी है।

पुष्पिका—क्या राजकुमार किसी भांति भी क्षमा नहीं किया जा सकेगा ?

विक्रमादित्य—मै उसे क्षमा कर भी सकता हूँ, किन्तु केवल एक बात पर और वह यह कि वह आर्य-धर्म स्वीकार करे और सारे देश मे उसका प्रचार करे। क्या वह यह प्रायश्चित स्वीकार करेगा ?

पुष्पिका—सम्राट्, मुझे आशा नही है।

विक्रमादित्य—तब वह अवश्य दण्डित होगा। उसने राजधर्म की अवहेलना की है, उसने राज्य के प्रति षड्यन्त्र किया है, उसने एक झूठे अभियोग से अपनी मुक्ति की कुटिल युक्ति सोची है।

पुष्पिका—(शिथिल होकर) सम्राट् की जो इच्छा!

विक्रमादित्य—और सुनो पुष्पिके, तुम्हारे दण्ड की भी व्यवस्था है। और यद्यपि सत्य बोलकर और राजधर्म की मर्यादा मानकर तुमने अपने अपराध की गुरुता कम कर ली है, फिर भी तुम्हे शक-क्षत्रप के साथ गुप्त अभिसन्धि करने के कारण दो मास के कारावास का दण्ड मिलेगा।

पुष्पिका—सम्राट्, मेरे कारावास का दण्ड बढा दीजिए, किन्तु मेरे उपकारी क्षत्रप को क्षमा कर दीजिए।

विक्रमादित्य—यह असम्भव है। राजनीति स्त्रियो की विनयशीलता से तरल नही हुआ करती। (प्रहरी के साथ भूमक सैनिक-वेश मे आता है। उसके हाथ मे तलवार है। वह एक सुन्दर शरीर का युवक दृष्टिगत होता है।)

विक्रमादित्य—(प्रहरी से) प्रहरी, तुम यहीं द्वार पर बाहर रहो, तुम्हारी आवश्यकता पड़ेगी।

प्रहरी—(सिर झुकाकर) जो आज्ञा। (प्रस्थान)

विक्रमादित्य—(भूमक से) आओ क्षत्रप-राजकुमार भूमक, मैं तुम्हारी गुप्त अभिसन्धि की सब बातें जान चुका हूँ। तुमने राज-मर्यादा का अपमान भी किया है। कपटपूर्ण अभियोग लाकर तुमने न्याय को धोखा देने की चेष्टा भी की है। तुम कुछ और कहना चाहते हो?

भूमक—जब उज्जयिनी की नारी ने भी मेरे साथ विश्वासघात किया तब मुझे और कुछ नहीं कहना।

विक्रमादित्य—तुम इसे विश्वासघात क्यो कहते हो क्षत्रप?

यदि उसने तुम्हारे पवित्र विश्वास की अवहेलना की होती तो वह निश्चय ही विश्वासघातिनी होती, किन्तु उसने सत्यासत्य का निर्णय करते हुए पवित्र राजधर्म की मर्यादा रखी। क्या इस आचरण के लिए तुम उसकी सराहना नही करोगे ?

भूमक—सम्राट्, मैने स्वय अपने दल के सैनिको से उसकी रक्षा की थी। मै चाहता था कि वह भी आर्य सम्राट् से मेरी रक्षा करती।

विक्रमादित्य—तो तुम उपकार का प्रतिदान चाहते हो ?

भूमक—नहीं, सकटकाल मे केवल आत्म-रक्षा, और कुछ नही।

विक्रमादित्य—किन्तु यह आत्म-रक्षा कपटपूर्ण अभियोग मे नही हो सकती। तुम द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत होकर आये हो ? (तलवार हाथ मे तोलते है।)

भूमक—मै प्रस्तुत होकर आया हूँ सम्राट्! (तलवार हाथ मे सँभालता है।)

विक्रमादित्य—किन्तु तुम्हे युद्ध-दान नही मिलेगा।

भूमक—मै कारण जानना चाहता हूँ।

विक्रमादित्य—कारण यह है कि स्त्री-वेश धारण कर लेने वाले व्यक्ति मेरे द्वन्द्व के योग्य नही रह जाते। मेरे सामने विभावरी का रूप है, मै उस पर कृपाण नही रख सकूँगा। तुम्हारे लिए वधिक का कृपाण हो सकता है, विक्रमादित्य का 'अपराजित' नही। तुम तलवार पृथ्वी पर रख दो।

भूमक—किन्तु मै द्वन्द्व चाहता हूँ।

विक्रमादित्य—(तीव्र स्वर मे) तुम न्याय-सभा के सामने हो क्षत्रप!

भूमक—(लज्जा और क्रोध से तलवार फेंक देता है।)

विक्रमादित्य—न्याय की आज्ञा-पालन करने के कारण मैं प्रसन्न हुआ। भूमक, तुमने स्त्री-वेश धारण करके राज्य-दृष्टि के प्रति छल किया, झूठा अभियोग लाकर तुमने राज्य-मर्यादा का अपमान किया, इसलिए तुम कठोर दण्ड के पात्र हो। किन्तु भूमक, किसी समय तुमने एक आर्य-नारी की प्राण-रक्षा की थी इस कारण तुम्हे आंशिक रूप से क्षमा भी दी जा सकती है, यदि तुम राज्य के नियम के अनुसार प्रायश्चित करो। तुम्हे प्रायश्चित करना स्वीकार है ?

भूमक—मुझे किसी प्रकार का भी प्रायश्चित करना स्वीकार नहीं है।

विक्रमादित्य—फिर झूठे अभियोग के लिए दण्ड निश्चित है।

भूमक—जो आपके समक्ष झूठा अभियोग है वह मेरे समक्ष मेरी राजनीति है।

विक्रमादित्य—किन्तु मैं तुम्हे अपनी राजनीति से दण्ड दे रहा हूँ। सम्राट् के साथ कपट करने का दण्ड तुम जानते हो, भूमक ?

भूमक—सम्राट्, मैंने कभी जानने की इच्छा नहीं की।

विक्रमादित्य—तो अब जान लो। तुम्हारे दोनो हाथ काट लिये जायँगे।

पुष्पिका—(शीघ्रता से घुटने टेककर) क्षमा सम्राट्, क्षमा।

विक्रमादित्य—उठो पुष्पिके, उठो, तुम पहले से ही दण्डित हो। अब तुम्हे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। (भूमक से) और भूमक, तुम्हारे दण्ड की व्यवस्था मैं इसी समय करूँगा।

(पुष्पिका उठती है।)

भूमक—सम्राट्, मैं हर समय प्रस्तुत हूँ।

(विक्रमादित्य घण्टे पर चोट करते हैं।)

विक्रमादित्य—भूमक, मुझे केवल दुःख यही है कि तुम्हारे हाथों के न रहने से मैं कभी तुम्हारा युद्ध-कौशल न देख सकूँगा, किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं। हाँ, अपने शेष जीवन में तुम यह प्रयत्न करना कि अगले जन्म में तुम्हारे दोनों हाथ जीवन-भर काम दे सकें।

(प्रहरी का प्रवेश।)

विक्रमादित्य—(प्रहरी से) प्रहरी, वधिक को शीघ्र यहाँ आने की आज्ञा सुनाओ। आज फिर भगवान् ज्योतिर्लिङ्ग महाकालेश्वर का रक्त से अभिषेक होगा।

प्रहरी—(सिर झुकाकर) जो आज्ञा।

विक्रमादित्य—पुष्पिके, अपने उपकारी के प्रति जो कुछ भी श्रद्धा-वाक्य कहना है मेरे सामने ही कह लो। मुझे खेद है कि तुम्हारी क्षमा-प्रार्थना मुझे अस्वीकार करनी पड़ी। किन्तु शासन का न्याय सर्वोपरि है। वह शकों के सम्बन्ध में क्रूर है और अपराधियों के सम्बन्ध में दृढ। वह तुम्हें अन्याय के समर्थन की आज्ञा नहीं देगा और (भूमक से) राजकुमार भूमक, मुझे खेद है कि तुम यहाँ एकाकी आये। यदि तुम्हारे कुछ साथी और होते तो पारस्परिक सहानुभूति में तुम लोगों का दुःख कुछ कम होता।

भूमक—सम्राट्, मुझे अपने दुर्भाग्य की चिन्ता नहीं है।

विक्रमादित्य—ठीक है, तुम्हें सन्तोष होगा। अब हाथों से रहित होने पर तुम कपट करने के पाप से बचे रहोगे।

भूमक—यदि राजनीति ही कपट हो तो मैं उसमें पाप नहीं समझता। फिर भी मैं अपमानित होकर जीवित नहीं रहना चाहता। आप वधिक को आज्ञा दें कि वह हाथों के बदले मेरा सिर काट दे।

विक्रमादित्य—नहीं, आज्ञा नहीं दी जा सकती, विक्रमादित्य

द्वन्द्व और रण-स्थल के अतिरिक्त किसी अन्य स्थल पर प्राण-दण्ड नहीं देता। मै केवल तुम्हारे हाथ काटने की आज्ञा दे सकूँगा। फिर तुम्हारे खण्डित शरीर से मुझे अन्याय रोकने मे भी सहायता मिल सकेगी। तुम दण्ड के प्रतीक बनकर इस प्रकार की न्याय-सभा करने के अवसर कम आने दोगे।

(वधिक का प्रवेश। अर्ध-नग्न, भयानक शरीर, कमर मे जाँघिया, हाथो मे कडे, बाल खुले हुए, माथे पर त्रिपुण्ड और हाथ मे कृपाण। वह आकर प्रणाम करता है।)

विक्रमादित्य—बधिक, तुम्हारे सामने यह शक अपराधी है। न्याय की आज्ञा है कि तुम इसके दोनो हाथ काट दो।

पुष्पिका—(आगे बढकर, हाथ जोडकर) सम्राट्, यदि आप राजकुमार को क्षमा नही करते तो मेरे भी दोनो हाथो के काटे जाने की आज्ञा दीजिए। अपने ऊपर उपकार करने वाले को दण्डित होता हुआ देखकर मेरी आत्मा तिरस्कार कर रही है। सम्राट्, मेरी कुछ प्रार्थना है।

विक्रमादित्य—(तीक्ष्ण स्वर मे) अपने स्थान पर ही रहो पुष्पिका, तुम्हारा न्याय हो चुका है। न्याय के आदेश मे परिवर्तन के लिए कोई स्थान नहीं है, जब तक कि अपराधी राजविधान के अनुसार प्रायश्चित न करे। मै अपनी ओर से एक बार फिर अवसर दे सकता हूँ। क्षत्रप, तुम प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो ?

भूमक—(दृढता से) नहीं।

विक्रमादित्य—(वधिक से) वधिक, तुम अपना कार्य करो।

वधिक—(भूमक से) अपराधी, घुटने टेको।

(भूमक घुटने टेकता है।)

वधिक—दोनो हाथ जोड़कर आगे बढ़ाओ।

(भूमक दोनो हाथ जोड़कर आगे बढाता है।)

विक्रमादित्य—शक राजकुमार, इन हाथो से एक बार भगवान् ज्योतिर्लिङ्ग महाकालेश्वर को प्रणाम करो, फिर प्रणाम करने वाले ये हाथ नही रहेगे।

भूमक—सम्राट्, क्षमा करे, मैने तीर्थंकरो और शक-सम्राटो के अतिरिक्त किसी को प्रणाम नही किया।

विक्रमादित्य—अब उन्हे दूसरे जन्म मे प्रणाम करना। राजकुमार, अब तुम प्रस्तुत हो?

भूमक—मै प्रस्तुत हूँ, सम्राट्!

विक्रमादित्य—(वधिक से) वधिक, अब तुम भी प्रस्तुत हो जाओ।

वधिक—जो आज्ञा। (वह अपना कृपाण उठाता है।)

विक्रमादित्य—तुम और कुछ कहना चाहते हो, क्षत्रप?

भूमक—कुछ नही सम्राट्! मै केवल यही दु:ख लेकर संसार मे रहूँगा कि विक्रमादित्य सम्राट् मॉगने पर भी मुझे मृत्यु नही दे सके। मुझे एक दु:ख और रहेगा कि अब हाथो के न रहने से मै अपने सम्मान की रक्षा भी न कर सकूँगा।

पुष्पिका—(गहरी सॉस लेकर) और समय पड़ने पर इन हाथो से किसी नारी की रक्षा भी नही हो सकेगी।

विक्रमादित्य—दो दु:ख तुम्हारे और एक दु:ख पुष्पिका का, तीन दु:ख हुए। मै इसके लिए आर्य-धर्म के तीन स्मारक बनवाऊँगा। और कुछ? (कुछ रुककर) कुछ नही? (वधिक से) वधिक, महाकालेश्वर का अभिषेक हो।

[वधिक तलवार उठाकर वार करता है। पुष्पिका शीघ्रता से आगे बढ जाती है और उसके माथे मे चोट लग जाती है। वह गिर पड़ती है। विक्रमादित्य शीघ्रता से बढकर उसके समीप पहुँचते हैं।]

विक्रमादित्य—(वधिक से) वधिक, ठहरो। (वधिक सहमकर

पीछे हट जाता है।) (गहरी साँस लेकर पुष्पिका से) पुष्पिके, यह तुमने क्या किया ?

पुष्पिका—(टूटे स्वर से) अपने उपकारी की रक्षा, सम्राट्!

भूमक—(उठकर) सम्राट्, मैं प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

विक्रमादित्य—(उठकर) क्षत्रप, यदि तुम पहले ही प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो जाते तो पुष्पिका को चोट न लगती।

भूमक—सम्राट्, मुझे आपके शासन में उज्जयिनी की नारी की महानता ज्ञात नही थी। मै नही जानता था कि आपने अपने शासन का आदर्श इतना ऊँचा रखा है, जिसमे नारियॉ उपकार का बदला देने के लिए अपने प्राणो का उत्सर्ग तक कर सकती है।

विक्रमादित्य—तो तुम प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो ?

भूमक—हॉ सम्राट्, मै प्रस्तुत हूँ।

विक्रमादित्य—(वधिक से) वधिक, तुम जा सकते हो।

(वधिक का सिर झुकाकर प्रस्थान)

विक्रमादित्य—(भूमक से) भूमक, मुझे प्रसन्नता है कि तुम प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो। प्रायश्चित की पहली व्यवस्था यह है कि तुम पुष्पिका को अपनी बहन समझकर—यदि वह जीवित रही तो—उसकी शुश्रूषा का भार लोगे। स्वीकार है ?

भूमक—(सिर झुकाकर) स्वीकार है सम्राट्! (पुष्पिका के सिर को अपने घुटने पर रखता है।)

विक्रमादित्य—प्रायश्चित की दूसरी व्यवस्था यह है कि तुम जैन-धर्म को छोड़कर आर्य-धर्म का पालन करोगे और उसका प्रचार सौराष्ट्र के समीपवर्ती प्रदेश मे करोगे। स्वीकार है ?

भूमक—(सिर झुकाकर) स्वीकार है, सम्राट् !

विक्रमादित्य—गौ-ब्राह्मण की रक्षा करने का पुनीत कर्त्तव्य तुम्हारे जीवन का प्रथम कर्त्तव्य होगा। स्वीकार है ?

भूमक—(सिर झुकाकर) मै स्वीकार करता हूँ, सम्राट् !

विक्रमादित्य—तो आज अपनी सारी प्रतिज्ञाओ को भगवान महाकालेश्वर के मन्दिर मे अभिमन्त्रित करो।

भूमक—मुझे स्वीकार है, सम्राट् ! पुष्पिका के महान् उत्सर्ग मे आपके चरित्र-बल की श्रेष्ठता छिपी हुई है। सुगन्धित पुष्प का विकास वसत ही मे होता है। आपके शासन मे मै अनुभव करता हूँ कि जैसे आर्य-धर्म का सूर्य अपनी उज्ज्वल और प्रखर रश्मियो से भारतीय गगन-मण्डल मे चमक रहा है और उसके सामने छल का कोई बादल नही आ सकता। मैने स्वयं अपनी आँखो से देख लिया कि आपके राज्य में कोई षड्यन्त्र सफल नही हो सकता। आज मुझे गौरव है कि मै आपका सेवक और आर्य-धर्म का सच्चा अनुयायी हूँ।

विक्रमादित्य—(हाथ उठाकर) तब तुम मुक्त हो, क्षत्रप राजकुमार !

पुष्पिका—सम्राट् (टूटे स्वर मे) मेरी. .प्रार्थना. .पूरी. . हुई मैं कृतज्ञ हूँ। औ. और मेरी . एक प्रार्थना ..... . और है। आज की अमर . घटना की... स्मृति . में. आपका सवत् प्रचलित हो।

भूमक—हाँ सम्राट्, अभी तक के मान्य युधिष्ठिर-संवत् के स्थान पर विक्रम-संवत् का प्रचलन हो, यह मेरी भी प्रार्थना है।

विक्रमादित्य—(हाथ उठाकर) तथास्तु ! पुष्पिके, तुम आदर्श नारी हो, तुम्हारी शुश्रूषा में राज्य की विशेष सहायता रहेगी !

तुम्हारे आदर्श आचरण के कारण तुम्हारा अपराध भी क्षमा किया गया।

भूमक और पुष्पिका—(सम्मिलित स्वर मे) सम्राट् विक्रमादित्य की जय हो!

(सम्राट् विक्रमादित्य अभय-मुद्रा में हाथ उठाते है।)

(परदा गिर जाता है।)

अधिकार का रक्षक

(एक व्यंग)

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

पात्र

मि० सेठ—एक दैनिक पत्र के मालिक तथा प्रान्तीय असेम्बली के उम्मीदवार

रामलखन—उनका नौकर

भगवती—रसोइया

कालेज के दो लडके, सम्पादक, श्रीमती सेठ, नन्हा बलराम

समय—आठ बजे सुबह

स्थान—मि० सेठ के मकान का ड्राइंग रूम

अधिकार का रक्षक

[बाईं ओर, दीवार के साथ एक बड़ी मेज लगी हुई है, जिस पर एक रैक मे करीने से पुस्तकें चुनी हैं। दाएँ-बाएँ कोनों मे लोहे की दो ट्रे रखी है, जिनमे एक मे आवश्यक कागज-पत्र आदि और दूसरी मे समाचार-पत्र रखे हैं। बीच मे शीशे का एक डेढ वर्गगज का चौकोर टुकड़ा रखा है जिसके नीचे कागज दबे हुए हैं। शीशे के टुकडे और किताबो के रैक के मध्य मे एक सुन्दर कलमदान रखा हुआ है और एक-दो कलम शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज की इस ओर एक गद्देदार कुरसी है, जिसके पास ही दाईं ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चोगा रखा हुआ है। स्टूल के दाईं ओर एक तख्तपोश है, जिसमे सफाई से बिस्तर बिछा हुआ है। कुरसी और तख्तपोश के बीच स्टूल इस तरह रखा हुआ है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चोगा दोनों जगहो से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख्तपोश के पास आरामकुरसी पड़ी हुई है। बाईं दीवार के साथ एक कौच का सेट है। बाईं दीवार मे दो खिड़कियाँ हैं, जिनके मध्य केलेण्डर लटक रहा है। दाईं ओर दीवार में एक दरवाजा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठाने पर मि० सेठ कुर्सी पर बैठे कोई समाचार-पत्र देखते नजर आते हैं।]

(टेलीफोन की घण्टी बजती है।)

(मि० सेठ समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोगा उठाते हैं।)

मि० सेठ—हलो !

(जरा और ऊँचे) हलो !

हाँ, हाँ, मै बोल रहा हूँ। घनश्यामदास ? आप अच्छा, अच्छा रलाराम जी मन्त्री हरिजन सभा है। नमस्ते ! (जरा हँसते है।) सुनाइए महाराज, कल के जलसे की कैसी रही ?

अच्छा, आपके भाषण के बाद हवा पलट गई। सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गए ?

ठीक-ठीक ! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने ! वास्तव मे मैने अपना समस्त जीवन पीड़ितो, पद-दलितो और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चो को ही लीजिए, हमारे घरो मे उनकी दशा कैसी शोचनीय है ! उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी, ऊल-जलूल और दाकियानूसी है ! उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित दबाव मे रखकर उन्हे कितना डरपोक और भीरु बनाया जाता है ! उन्हे

(छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।)

बलराम—बाबूजी, बाबूजी, हमें मेले

मि० सेठ—(पूर्ववत् टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज तनिक ऊँची हो जाती है।) हाँ, हाँ, मै कह रहा हूँ कि मैने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए, उनके स्वास्थ्य

बलराम—(और समीप आकर कुरते का छोर पकड़कर) बाबूजी

मि० सेठ—(चोगे से मुँह हटाकर, क्रोध से) ठहर-ठहर, कमबख्त ! देखता नही मै टेलीफोन पर बात

(बच्चा रोने लगवा है।)

मि० सेठ—(टेलीफोन पर) मैं आपसे अभी एक सेकंड में बात करता हूँ, इधर जरा शोर हो रहा है।

(चोंगा खट से मेज पर रख देते हैं।)

(बच्चे से) चल, निकल यहाँ से। सूअर! कमबख्त!

(कान पकड़कर उसे दरवाजे की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है।)

(नौकर को आवाज देते है) ओ रामलखन, ओ राम-लखन!

रामलखन—(बाहर से) आये रहे बाबूजी!

(भागता हुआ भीतर आता है। सास फूली हुई है।)

जी बाबू जी!

(मि० सेठ नौकर को पीटते हैं।)

मि० सेठ—सूअर! हरामखोर! पाजी! क्यो इसे इधर आने दिया? क्यो इधर आने दिया इसे?

रामलखन—अब बाबू काहे मारत हो? लिये तो जात रहे।

(लड़के का बाजू थामकर उसे बाहर ले जाता है।)

मि० सेठ—और सुनो, किसी को इधर मत आने देना। कोई बाहर से आये तो पहले आकर खबर देना। समझे। नही तो मारकर खाल उधेड़ दूँगा।

(नौकर और लड़के को बाहर निकालकर जोर से किवाड़ लगा देते है।)

हुँ अहमक! मुफ्त मे इतना समय नष्ट कर दिया।

(चोगा उठाते हैं।)

(तनिक कर्कश स्वर मे) हलो (आवाज मे जरा विनम्रता लाकर) अच्छा, अच्छा, आप अभी है (स्वर को कुछ और सयत करके) तो मै कह रहा था कि प्रान्त मे मै ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन किया जो घरो और स्कूलो मे छोटे-छोटे बच्चो पर तोड़ा जाता है; और फिर वह मै ही हूँ जिसने पाठशालाओ में शारीरिक दंड को तत्काल बन्द कर देने पर जोर दिया। दूसरे घरो मे काम करने वाले अत्या-

चार-पीड़ित भोले-भाले निरीह नौकर है, जो क्रूर मालिको के जुल्म का शिकार बनते है। इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने के हेतु मैने नौकर-यूनियन स्थापित की। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैने हरिजनो का पक्ष लिया, उनके स्वत्वो की, उनके अधिकारो की रक्षा के लिए मैने दिन-रात एक कर दिया है और और भी यदि परमात्मा ने चाहा और मै धारा-सभा मे गया तो

(दरवाजा खुलता है।)

रामलखन—(दरवाजे से झाँककर) बाबूजी जमादारिन

मि० सेठ—(टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मै वहाँ भी हरिजनो की सेवा करूँगा । आप अपनी हरिजन-सभा मे इस बात की घोषणा कर दें।

रामलखन—(जरा अन्दर आकर) बाबूजी .

मि० सेठ—(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफोन मे) नही-नही, मै नौकर को कह रहा था (खिसियाने से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मै असेम्बली मे हरिजनो के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक मे प्रोपेगेंडा करें।

है. क्या ? अच्छा अच्छा मै अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा। क्या करूँ अवकाश नही मिलता; हिं-हिं . . हिं-हिं . .(हँसते हैं) अच्छा नमस्कार है।

(टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं।)

(नौकर से) तुम्हें तो कहा था, इधर मत आना।

रामलखन—आप ई तो कहे कि कऊ आए तो इत्तला कर देई, मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी माँगत ..

मि० सेठ—(गुस्से से) कह दो उससे, अगले महीने आये। मेरे पास समय नही। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भंगिन—(दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर मे) महाराज, दूधो नहाओ, पूतो फलो। दो महीने हो गए है।

मि० सेठ—कह जो दिया। जाओ, अब समय नही।

(भगवती प्रवेश करता है।)

भगवती—जयरामजी की बाबूजी !

मि० सेठ—तुम इस समय क्यो आये हो भगवती ?

भगवती—बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो।

मि० सेठ—(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आजकल चुनाव के कारण कुछ नही सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती—बाबूजी, अब एक घड़ी भी नही ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए।

मि० सेठ—(जरा ऊँचे स्वर मे) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नही और तुम हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती—जब आपकी नौकरी करते है तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जायँ।

मि० सेठ—अभी चार दिन हुए जो दो रुपये ले गये थे।

भगवती—वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग मे बनिये की भेंट हो गया था, दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है।

मि० सेठ—(जेब से रुपया निकालकर फर्श पर फेंकते हुए) तो लो, अभी एक रुपया ले जाओ।

भगवती—नही बाबूजी एक-एक नही। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिले तीन महीने हो गए हैं। एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आखिर बीबी-बच्चे है; उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते है, उतना हमारे एक महीने

मि० सेठ—(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो ? कह जो दिया, अभी यही ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती—हम तो आज ही सब लेकर जायँगे।

मि० सेठ—(उठकर, और भी क्रोध से) क्या कहा ? आज ही लोगे, अभी लोगे ! जा, नही देते, एक कौड़ी भी नही देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस मे रिपोर्ट कर दे। पाजी हरामखोर, सूअर ! आज तक सब्जी मे, दाल में, सौदा-सुलुफ मे, यहाँ तक कि बाजार से आने वाली हर चीज मे पैसे खाता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यो अकड़ता है ? जा निकल जा। जाकर अदालत मे मामला चला दे। चोरी के अपराध मे छः महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नही।

भगवती—सच है बाबूजी, गरीब लाख ईमानदार हो तो चोर है, डाकू है और अमीर यदि आँखो मे धूल झोककर हजारो पर हाथ साफ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रो

मि० सेठ—(क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नही, (नौकर को आवाज देते हैं) रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बाबूजी, जी बाबूजी !

(भागता हुआ भीतर आता है।)

मि० सेठ—इसको बाहर निकाल दो।

रामलखन—(भगवती के बलिष्ठ, चौडे-चकले शरीर को नख से शिख तक देखकर) ई को बाहर निकारि दें, ई हमसो कब निकस, ई तो हमें निकारि दे

मि० सेठ—(बाजू से रामलखन को परे हटाकर), हट तुझसे क्या होगा ?

(भगवती को पकड़कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं।)

निकलो, निकलो !

भगवती—मार लें और मार लें। हमारे चार पैसे रखकर आप लक्षाधीश न हो जायँगे।

(मि० सेठ उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं।)

(रामलखन से) तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो ? निकलो।

(रामलखन डरकर निकल जाता है।)

मि० सेठ—(तख्तपोश पर लेटते हुए) मूर्ख, नामाकूल !

(फिर उठकर कमरे मे इधर-उधर घूमते है, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते है, फिर नौकर को आवाज देते है।)

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—(बाहर से) आए रहे बाबूजी !

(प्रवेश करता है।)

मि० सेठ—अखबार अभी आया है कि नही ?

रामलखन—आ गया बाबूजी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाये देत।

मि० सेठ—पहले इधर क्यो नही लाया ? कितनी बार तुझे कहा अखबार पहले इधर लाया कर। ला भाग कर।

(रामलखन भागता हुआ जाता है।)

मि० सेठ—(घूमते हुए अपने-आप) मेरा वक्तव्य कितना जोरदार था ! छात्रों में हलचल मच गई होगी, सबकी सहानुभूति मेरे साथ हो जायगी।

(टेलीफोन की घण्टी बजती है। मि० सेठ जल्दी से चोगा उठाते है।)

(टेलीफोन पर, धीरे से) हलो !

(जरा ऊँचे) हलो ! कौन साहब ? मन्त्री होज़री यूनियन ! अच्छा-अच्छा, नमस्कार, नमस्कार ! सुनाइए, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ?

क्या ? सब मेरे हक मे वोट देने को तैयार है। मैं कृतज्ञ हूँ। मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ।

इस ओर से आप बिलकुल निश्चिन्त रहे। मै उन आदमियो मे से नही जो कहते है कुछ और करते कुछ है। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलैक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव सम्बन्धी घोषणा-पत्र) नहीं पढ़ा। मै असेम्बली मे जाते ही मजदूरो की अवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा; उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगो के सम्बन्ध मे विशेष बिल धारासभा में पेश करूँगा।

क्या? हाँ हाँ, इस ओर से भी मै लापरवाह नही। मै जानता हूँ इस सिलसिले मे श्रम-जीवियो को किस-किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजीपति गरीब मजदूरो के कई-कई महीनो के वेतन रोककर उन्हे भूखो मरने पर विवश कर देते है। स्वयं मोटरो में सैर करते है, शानदार होटलो में खाना खाते है और जब ये गरीब रात-दिन परिश्रम करने के बाद, लोहू-पानी एक कर देने के बाद, अपनी मजदूरी माँगते है तब उन्हे हाथ तंग होने का, कारोबार मे हानि होने का अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बना टाल देते है। मैं असेम्बली मे जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे मे मजदूरो की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगो ने गरीब श्रमिको के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रखे हो उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हे दण्ड दिया जाय।

हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहो आने ठीक है। मै असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घण्टे काम की माँग कोई अनुचित नही। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर होना चाहिए। तेरह-तेरह घण्टे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है।

(धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं।)

(पतले-दुबले-से, आँखो पर मोटे शीशे की ऐनक चढी है। गाल पिचक गए हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है।)

(धीरे से दरवाजा बन्द करके खडे रहते हैं।)

मि० सेठ—(सम्पादक से) आप बैठिए (टेलीफोन पर) यह हमारे सम्पादक महोदय आये है। अच्छा तो सन्ध्या को आपकी सभा हो रही है। मै आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार !

(चोगा रख देते है।)

(सम्पादक से) बैठ जाइए, आप खड़े क्यो है ?

सम्पादक—नहीं, कोई बात नहीं।

(तकल्लुफ के साथ कौच पर बैठते हैं। रामलखन अखबार लिये आता है।)

रामलखन—बड़े काका तो देत नही रहन, मुदा जबरदस्ती लेई आये।

मि० सेठ—(समाचार-पत्र लेकर) जा-जा, बाहर बैठ !

(कुरसी को तख्तपोश के पास सरका कर उस पर बैठते हैं, पाँव तख्त-पोश पर टिका लेते और समाचार-पत्र देखने लगते है।)

सम्पादक—मै मै

मि० सेठ—(अखबार बन्द करके) हॉ, हॉ, पहले आप ही फरमाइए।

सम्पादक—(होंठो पर जबान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी . मेरा मतलब है कि मेरी ऑखे बहुत खराब हो रही है।

मि० सेठ—आपको डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए था। कहिए डॉक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ ?

सम्पादक—नहीं, यह बात नही, (थूक निगलकर) बात यह

है कि मेरी आँखें इतना बोझ सहन नही कर सकतीं । आप जानते है, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है, बल्कि आज-कल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ । शाम को छ-सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते है, तीन भी बज जाते है !

मि० सेठ—तो आप इतना न बैठा करे बस, जल्दी काम निबटा दिया

सम्पादक—मै तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निबट सकता है ? एक मै हूँ, और दो दूसरे आदमी है, जो न ठीक अनुवाद कर सकते है, न ठीक लेख लिख सकते है। और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठो का निकालना होता है । फिर शायद काम जल्द खतम हो जाय, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज

मि० सेठ—हॉ, हॉ, समाचार तो न रहना चाहिए।

सम्पादक—और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की भी प्रतीक्षा करनी होती है । उन्हे ठीक करते-करते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते है ?

मि० सेठ—(बेजारी से) तो आखिर आप क्या चाहते है ?

सम्पादक—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दे तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मै, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है, जिससे

मि० सेठ—मै आपसे पहले भी कह चुका हूँ, यह असंभव है, बिलकुल असभव है । अखबार कोई बहुत लाभ पर नही चल रहा; इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है ? अगले महीने पॉच रुपये मै आपके बढ़ा दूँगा ।

सम्पादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नही देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घण्टे काम कर सकती है ?

मि० सेठ—कैसी मूर्खो की बातें करते हो जी ? छ महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नही मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहे तो शौक से छोड़ दें। एक नही दस आदमी मिल जायँगे, लेकिन

(रामलखन भीतर आता है।)

रामलखन—बाहर द्वि लड़िका आपसे मिलना चाहत रहन।

मि० सेठ—कौन है ?

रामलखन—कोई सकटड़ी कहे रहन

मि० सेठ—जाओ, बुला लाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र मे मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कालेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक—(मुँह फुलाये हुए) अवश्य पड़ा होगा।

मि० सेठ—मैने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो माँगे विश्वविद्यालय के सामने पेश की है, मैने उन सबका समर्थन किया है।

(दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनो सूट पहने हुए है, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के गले में खुले कालर की कमीज है।)

दोनों—नमस्ते !

मि० सेठ—नमस्ते !

(दोनो कोच पर बैठते हैं।)

मि० सेठ—कहिए, मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

खुले कालर वाला—हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

मि० सेठ—आपने उसे कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का—छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि० सेठ—आपके मित्र किधर वोट दे रहे है?

वही लड़का—कल तक तो कुछ न पूछिए, लेकिन मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गए है। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रो का बहुमत आपकी तरफ था।

मि० सेठ—(प्रसन्नता से) और मैने गलत ही क्या लिखा है! जिन लोगो का मन बूढा हो चुका है वे नवयुवको का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे? युवको को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हो, जो रिफार्म से खौफ न खाये, सुधारो से कन्नी न कतराये।

वही लड़का—हम अपने कालेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे, परन्तु कालेज के सर्वेसर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

मि० सेठ—आपको प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का—हमने हड़ताल कर दी है।

मि० सेठ—आपने क्या माँगे पेश की है?

वही लड़का—हम वर्तमान प्रिंसिपल को नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है; कोई छीके तो जुरमाना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है; छात्रो से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारो से अत्यन्त अपमानजनक है।

मि० सेठ—(कुछ उत्साहहीन होकर) तो आप क्या चाहते है?

दोनो—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

मि० सेठ—(गिरी हुई आवाज मे) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक

रीति प्रयोग मे लाते; प्रबन्धको से मिल-जुलकर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—हम सब-कुछ देख चुके है।

मि० सेठ—हूँ।

टाई वाला लड़का—बात यह है जनाब, कि छात्र कई वर्ष से वर्तमान प्रिंसिपल से असन्तोष प्रकट करते आ रहे है, पर व्यवस्थापको ने तनिक भी परवाह न की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबन्धक-कमेटी के पास भेजे गए, पर कमेटी के कानो पर जूँ तक भी नही रेगी। हारकर हमने हड़ताल कर दी है। पर कठिनाई यह है कि कमेटी काफी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराए जा रहे है और हमारी खबर तक नही छापी जाती। आपने छात्रो की सहायता का, उनके अधिकारो की रक्षा का बीड़ा उठाया है, इसलिए आपकी सेवा मे उपस्थित हुए है।

मि० सेठ—(अन्यमनस्कता से) मै आपका सेवक हूँ। यह हमारे सम्पादक है, आप कल दफ्तर मे जाकर इनको अपना बयान दे दे। यह जितना उचित समझेगे छाप देगे।

दोनो—(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादक जी की सेवा में उपस्थित होगे। नमस्कार।

मि० सेठ और सम्पादक—नमस्कार।

(दोनो का प्रस्थान।)

मि० सेठ—(सम्पादक से) यदि कल ये आयें तो इनका बयान हरगिज न छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु है और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।

सम्पादक—(मुँह फुलाये हुए) बहुत अच्छा।

मि० सेठ—आप घबराएँ नही, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफत आ गई? जब मैने

अखबार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे काम किया करता था। यह महीना आप किसी-न-किसी तरह निकालिए; चुनाव हो ले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—(दीर्घ नि.श्वास छोडकर) बहुत अच्छा।

(मि० सेठ समाचार-पत्र पढना शुरू कर देते हैं। दरवाजा जोर से खुलता है और बलराम का बाजू थामे श्रीमती सेठ बगूले की भाँति प्रवेश करती हैं।)

श्रीमती सेठ—मै कहती हूँ, आप बच्चो से प्यार करना भी सीखेंगे ? जब देखो, घूरते, झिड़कते, डॉटते नजर आते हो, जैसे बच्चे अपने न हो, पराये हो। भला, आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे ? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

मि० सेठ—(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हे कभी बात करने का सलीका भी आएगा ? जाओ, इस समय मेरे पास समय नही है।

श्रीमती सेठ—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है ? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से समय निकल आता है ? इतनी देर से ढूँढ़ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसियो आवाजे दी, घर का कोना-कोना छान मारा। आखिर देखा कि भूसे की कोठरी मे बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गई थी ?

मि० सेठ—(क्रोध से अखबार को तख्तपोश पर पटककर) क्या बके जा रही हो ? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभालकर रखा करो। आ जाते हैं सुबह-सुबह दिमाग चाटने के लिए।

(श्रीमती सेठ बच्चे को दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।)

श्रीमती सेठ—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर। यह बाप नही, दुश्मन है। लोगो के बच्चो से प्रेम करेंगे,

उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास कराएँगे, उनकी उन्नति के भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चो के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द जबान पर न लाएँगे।

(बच्चे के और चपत लगाती है।)

—तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती; (आवाज ऊँची होते-होते रोने की हद को पहुँचती है।) स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ—मार खाने ? कान तुड़वाने ?

मि० सेठ—(क्रोध से पागल होकर, पत्नी को ढकेलते हुए) मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो, यहाँ इस कमरे मे आकर क्यों शोर मचा दिया ? अभी कोई आ जाय तो क्या हो ? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अन्दर जाकर बैठा करो।

(श्रीमती सेठ तुनककर खड़ी हो जाती हैं।)

श्रीमती सेठ—आप कभी घर के अन्दर आयें भी। आपके लिए तो घर के अन्दर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे मे खाओ, टेलीफोन सिरहाने रखकर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालो का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमे कुछ कहना हो तो किस समय कहे ?

मि० सेठ—कौनसा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गई ? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ—सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिए। कहे तो मै ही उसका सिर फोड़ दूँ।

(उन्मादियों की भाँति बच्चे का सिर पकड़कर तख्तपोश पर मारती है। मि० सेठ तड़ातड़ पीटते हैं।)

मि० सेठ—मै कहता हूँ, तुम पागल हो गई हो । निकल जाओ यहाँ से । मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोडना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बकबक से तंग आकर मै इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है। क्या चाहती हो ? यहाँ से भी चला जाऊँ ?

श्रीमती सेठ—(रोती हुई) आप क्यो चले जायँ, हम ही चले जायँगे।

(भर्राई हुई आवाज मे नौकर को आवाज देती है ।)

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बीबीजी !

(प्रवेश करता है ।)

श्रीमती सेठ—जाओ, जाकर ताँगा ले आओ । मै मायके जाऊँगी। (तेजी से बच्चे को लेकर चली जाती हे। दरवाजा जोर से बन्द होता है ।)

मि० सेठ—बेवकूफ !

(आरामकुरसी पर बैठकर टाँगें तखतपोश पर रख देते हैं और पीछे को लेटकर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलीफोन की घण्टी बजती है।)

मि० सेठ—(वही से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर मे) हलो ! हलो ! नही, यह ३८१२ है, गलत नम्बर है ।

(बेजारी से चोंगा रख देते हैं ।)

ईडियट्स !

(टेलीफोन की घण्टी फिर बजती है ।)

(और भी कर्कश स्वर में) हलो ! हलो !

कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठकर बैठते हैं। चेहरे पर मृदुलता और आवाज में माधुर्य आ जाता है ।) माफ कीजिएगा, मैं

ज़रा परेशान हूँ। सुनाइए, तबियत तो ठीक है ?

(दीर्घ नि श्वास छोडकर) मै भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए, आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मै भी कुछ आशा रखूँ या नहीं ?

मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूँ। आप विश्वास रखे, मै जी-जान से स्त्रियो के अधिकारो की रक्षा करूँगा। महिलाओ के अधिकारो का मुझसे बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारो मे कहीं नज़र न आएगा

(पर्दा गिरता है।)

गिरती दीवारें

(१९वीं सदी का एक चित्र)

श्री उदयशंकर भट्ट

पात्र

राव साहब—१९वी सदी के एक रूढिधारी
कुल का स्वामी—कुलपति
विजयमोहन—राव साहब का बड़ा लड़का
प्रद्युम्नकुमार—राव साहब का छोटा लड़का
मुन्शी—राव साहब का पुराना मुन्शी
रामनारायण—राव साहब का नौकर
कान्ता—प्रद्युम्नकुमार की लड़की
मिस साहब—कान्ता की 'ईसाई' अध्यापिका
रामनारायण की लड़की, अन्य नौकर आदि

गिरती दीवारें

[एक पुराने रईस का कमरा—देशी ढग से सजा हुआ। जमीन पर एक मोटा गद्दा बिछा है, जो आधे से अधिक कमरे को घेरे हुए है। दरवाजे के पास किनारे-किनारे कुरसियाँ रखी हुई है—बेंत की बनी हुई। गद्दे पर गाव-तकियो की कतार ठीक ढग से रखी है। एक तरफ कोने में एक मेज पर ताँबे का लोटा रखा है।

दीवार पर विभिन्न प्रकार के चित्र लगे हैं। एक ओर उस वश के पूर्वजो के चित्र लगे है। प्राय. प्रत्येक चित्र मे उस हिस्से के पूर्वज चोगा पहने हुए है। कान को ढके हुए एक विशेप नोक वाला साफा है। ऐसी नोक जन-साधारण अपनी पगडी मे नही रखते। यही इस परिवार की विशेषता है—चोगा और पगड़ी।

कमरे के वातावरण को देखकर ज्ञात होता है कि रूढियो को पालना इस कुल का परम लक्ष्य है। कोई ऐसी बात, जो अब तक नहीं हुई, इस घर मे नही हो सकती। जिस ढग से बात करने का नियम है उसी ढग से बात करना सिखाया जाता है। प्रत्येक लड़के को यही सीखना होता है कि इस कुल की परम्परा क्या है। परम्परा के विरुद्ध कुछ नहीं होता।

कुलपति अस्सी-पिचासी वर्ष के व्यक्ति हैं। उनका शरीर शिथिल है। अपने पूर्वजो की पोशाक मे कालीन पर जा बैठते है। उनकी आज्ञा है, कोई भी व्यक्ति उस कमरे मे जोर से न बोले, बिलकुल धीरे अदब-कायदे से आये। जूते दरवाजे के पास उतारे। यदि जूते न उतारने हो तो दीवार के किनारे लगी हुई कुरसियों पर बैठे।

यही उस कुल तथा कमरे की रक्षा का उपाय है। उस कमरे में स्त्रियाँ

नही आ सकतीं, छोटी-छोटी लडकियाँ भी नही। उनके लिए उस कमरे के पीछे बडे कमरे मे उठने बैठने का स्थान निश्चित है।

मुख्य कमरे के साथ एक छोटा कमरा है जिसमे कुलपति का पुराना मुन्शी बैठा रहता है। उसके सामने रजिस्टर-बहियाँ एक डेस्क पर फैली हैं। वह छोटा कमरा उस कमरे से दिखाई देता है। केवल मान-रक्षा के लिए एक पर्दा डाल दिया गया है। आवश्यकता होने पर पर्दा हटा दिया जाता है। पर ऐसा बहुत कम होता है—प्राय उस समय जब बड़े आदमी घर पर नहीं रहते। एक बात और, उस घर का कोई व्यक्ति पैदल नहीं चल सकता। उसे गाड़ी पर जाना होगा।

कहा जाता है उनके पूर्वज किसी राजा के यहाँ एक बड़े पद पर नियुक्त थे। महाराजा उनको बहुत मानते थे, यहाँ तक कि महल और अपने घर के सिवा वे कभी पैदल नहीं चले। सदा बन्द गाड़ी मे चलते। नगर के बहुत से व्यक्तियो ने उनको नहीं देखा था।

तब से कुल का बड़ा लड़का, जो घर का मालिक होता था, इस नियम का पालन करता था। फिर भी पैदल चलना, बिना चोगे-पगड़ी के दीवानखाने मे आना असम्भव समझा जाता था। वृद्ध का एक लड़का था जो उसी नियम का पालन करता था। गृह-स्वामी कभी-कभी उस कमरे मे आते हैं।

कमरे मे उत्तर की ओर क्रमश· तीन आसन (कालीन) गाव-तकियो के साथ बिछे हैं। उन पर क्रमश वश के पूर्वज बैठा करते थे। प्रत्येक आसन पर उन पूर्वजो के चोगे, पगड़ी और खड़ाऊँ रखी हैं। खड़ाऊँ पर फूल चढे हैं। चौथा आसन ठीक इसी प्रकार का गृह-पति का है। उसके साथ ही लड़के का आसन है। गृह-पति के आसन पर तीन गाव-तकिये और लड़के के आसन पर एक नक्काशीदार डेस्क है।

उस कमरे में घुसने का कायदा यह है कि सिवा गृह-पति के जो भी व्यक्ति उस कमरे मे आये उसे तीन बार झुककर सलाम करना पड़ता है। गृह-पति के आसन के पास एक गोल कटोरा और एक छोटा-सा डडा रखा

है। स्वामी जब किसी को बुलाना चाहते हैं तो कटोरे को डण्डे से बजाते हैं। इस समय कमरा खाली है। एक नौकर है, जो कमरे की धूल झाड़ रहा है। वह प्रत्येक आसन के पास जाकर तीन बार झुककर सलाम करता है, फिर सब चीजो को साफ करता है। साफ करते हुए कभी-कभी सीटी बजाता है, बोलता नहीं। एकाएक नौकर की लड़की रोती हुई दौड़ी आती है।]

लड़की—(जोर से) काका, काका, ओइ काका !

नौकर—(डर से मुँह पर उँगली रखकर) चुप !

लड़की—काका, भैया चौतरे से गिर पड़ा। काका, उसके खून निकल आया। अम्मा बुला रही है, चलो जल्दी।

नौकर—(बहुत धीरे से) तू जा, मै आया। रॉड कही की, चिल्ला रही है। जा .।

लड़की—चलो न काका, चलो।

नौकर—जा (उसी स्वर मे पास जाकर कमरे से बाहर कर देता है। लड़की रोती-रोती चली जाती है।)

(सहसा पीछे से वृद्ध का प्रवेश)

राव साहब—(धीरे से) रामनारायण, यह क्या ? अरे तुमने यह क्या किया ? तुम्हे मालूम है आज तक इस कमरे मे कोई जोर से नही बोला। बड़ा गजब हो गया रे ! (स्वय कॉपने-सा लगते हैं।) देखते हो हमारे पूर्वज इसमे रहते है। (इतना कहने के साथ प्रत्येक आसन को झुक-झुककर सलाम करते है, रामनारायण एकदम स्वामी का आना जानकर कॉपने लगता है।)

राव साहब—यह तो बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ ! (बैठकर डण्डे से कटोरा बजाते हे) ठहरो ! तुम इस कमरे से नही जा सकते, ठहरो ! (घण्टी की आवाज से वृद्ध मुन्शी आ जाता है। आने पर वह भी तीन बार झुककर सलाम करता है।) मुन्शी, सुनो मुन्शी, रामनारायण ने मेरे वंश की प्रथा को तोड़ा है। सुना मुन्शी, इसने पर-

म्परा से चली आई प्रथा को तोड डाला है। इस कमरे मे मेरे पूर्वज निवास करते है। (इसके साथ प्रत्येक आसन की ओर हाथ उठाते हैं, मानो उन्हे सलाम कर रहे हो।) मैने कोई भी व्यक्ति इस कमरे में जोर से बोलते नही देखा—अपने समय मे ही नही, पिताजी के समय मे भी।

मुन्शी—मै स्वयं पचास वर्ष से रहा हूँ, श्रीमान्! मैने आज तक ऐसा अनर्थ नही देखा। यह तो बुरी बात है।

राव साहब—न जाने क्या होने वाला है?

मुन्शी—मुझे रात से ही भयङ्कर स्वप्न आ रहे है। प्रात-काल यह हो गया।

नौकर—महाराज, क्षमा चाहता हूँ।

राव साहब—कभी ऐसा नही हुआ। हम लोग सदा से ही मर्यादा का पालन करते आए हैं। इसको मेरे सामने से हटा दो मुन्शी! ओह वह देखो, ओह वह देखो! पिता, पितामह प्रपिता-मह के चोगे क्रोध से हिल रहे है। देखते हो न? अरे (ऊपर देखकर) सब पूर्वजो के चित्र मेरी ओर क्रोध से देख रहे है! न जाने क्या होने वाला है?

(मुन्शी नौकर को हाथ से पकडकर बाहर निकाल देता है।)

मुन्शी—अनर्थ यही तक नही हुआ, रामनारायण की लड़की आ गई।

राव साहब—(डर के मारे आँखें बन्द कर लेते हैं, काँपते हुए) लड़की आ गई? क्या वह लड़की थी मुन्शी? (बैठकर) अब क्या होगा? गजब हो गया, अनर्थ हो गया। (चित्रो की ओर झपकती हुई आँखो से देखते हुए), मर्यादा भंग हो गई। (डर के मारे दूसरी बार कटोरा बजा देते हैं) है, यह क्या हुआ? यह दूसरी बार कटोरा क्यो बज उठा? ऐसा कभी नहीं हुआ। यह अन-होनी बात है, मुन्शी!

मुन्शी—जी, अनहोनी बात है । न जाने क्या होने वाला है ? ऐसा तो इस घर में कभी नहीं हुआ ।

राव साहब—हाँ, रामनारायण के दण्ड की व्यवस्था करनी होगी । भंयकर बातें हो रही हैं इस घर मे । देखो, विजयमोहन (बड़ा लड़का) कहाँ है ? रात मे एक भंयकर स्वप्न देखा था मुन्शी ! (एकदम गाव-तकिए का सहारा लेकर आँखें बन्द कर लेते हैं । चेहरा पीला पड़ जाता है । मुन्शी पखा करने लगता है । रामनारायण कटोरे की आवाज सुनकर लौट आता है ।) अरे, यह फिर आ गया ! फिर आ गया यह ! इसने मेरे सारे स्वप्न भंग कर दिए । जा दुष्ट, तुने मेरे जीवन का अन्तिम सुख छीन लिया । दूर हो (राव साहब के लड़के का अस्त-व्यस्त अवस्था में प्रवेश) अरे ! यह क्या ? चोगा फट कैसे गया, विजय ? गज़ब हो गया ! न जाने क्या होने वाला है !

विजयमोहन—(खेद के साथ तीन बार पूर्वजो की गद्दी को सलाम करके) न जाने क्या होने वाला है पिताजी ! आज मुझे जीवन में पहली बार पैदल चलना पड़ा । सब लोग देख रहे थे ।

मुन्शी—वश की प्रतिष्ठा सब नष्ट हो गई, महाराज ! चोगा फट गया ।

राव साहब—न जाने क्या होने वाला है ! (तकिए पर ढुलक जाते है । सब लोग सँभालने दौड़ते हैं ।)

विजय—न जाने क्या होने वाला है मुन्शी ! रास्ते में आते-आते मेरी गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से टकरा गई, लोगो ने मुझे देख लिया । ओह, मेरा चोगा फट गया ! बहुत ही अशुभ चिह्न है मुन्शी !

मुन्शी—हाँ बाबू, न जाने क्या होने वाला है ! आज सवेरे रामनारायण की लड़की कमरे मे घुस आई और चिल्लाने लगी ।

विजय—है ! (आश्चर्य से) है ! ऐसा क्यो ?

मुन्शी—हॉ बाबू ! लक्षण अच्छे नही है। इस घर ने सदा मर्यादा का पालन किया है। आज तक किसी ने भी इन पूर्वजो के साथ ज़ोर से बाते नही की।

विजय—मै बहुत दिनो से देख रहा हूँ, इस घर की प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते जा रहे है।

राव साहब—(चैतन्य होकर) क्या कहा ? प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते जा रहे है। मेरे रहते ही क्या, विजयमोहन ? नही ऐसा न कहो। (चित्रो को प्रणाम करते हुए) क्रोध न कीजिए। मैने भरसक इस घर की मर्यादा की रक्षा की है, तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है। देखो विजय, रामनारायण बिना खाये-पिये मेरे इन पूर्वजो के सामने हाथ जोड़े मौन खडा रहेगा। समझे ! यही हमारे वंश का दण्ड है, उनके लिए जो हमारे नियम भंग करते है। (वे चुप रहते है।) मैने सुना है, देखा नहीं, कि दादाजी के समय में कोई सम्बन्धी इस कमरे में घुसकर ज़ोर से चिल्लाया तो उन्होने उसे सात दिन तक निराहार रहकर खड़े रहने का आदेश दिया था। जब वह मूर्छित हो गया तो उसे खाट से बॉधकर खाट खड़ी कर दी गई थी। वंश-मर्यादा का तोड़ना साधारण बात नही, विजय !

विजय—यथार्थ है पिताजी !

मुन्शी—मै पचास वर्ष से इस घर का अन्न खा रहा हूँ। मैंने कभी नहीं देखा कि किसी ने वंश-मर्यादा मे बट्टा लगाया हो, वंश की मर्यादा में धक्का लगाकर उसे पीछे धकेला हो। आखिर यह महाराज के कोषाध्यक्ष का कुल है। मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नही निकले। एक बार गॉव के बाहर लोगों ने उनके दर्शनो की इच्छा प्रकट की। तब वे पालकी मे बैठकर एक बार गॉव गये, केवल एक बार। वहॉ भी गॉव के लोगो ने उनके दर्शन पर्दे से किये। उस समय गॉव के लोगों

को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे भगवान उतर आए हो। बाहर वे कभी न निकले। अंग्रेजो के दरबार में भी वे जाते रहे। सरकार बहादुर ने उनके मिलने का खास प्रबन्ध किया था। उनसे कह दिया था कि आपके आने की कोई आवश्यकता नही है। सरकार आप पर बहुत खुश हे।

राव साहब—तुम ठीक कहते हो मुन्शी! यही बात है। तब से इसी तरह मै भी बाहर आता-जाता रहा हूँ। तीस वर्ष पूर्व जब मै तीर्थ-यात्रा को गया तब भी पालकी ही मे यात्रा की। एक बार चलते-चलते हमारे पालकी वाले कीचड मे फँस गए। उस समय गाँववालो ने ही मेरी सहायता की, मै पालकी से नहीं उतरा। मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा। मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वश बहुत ऊँचा है, हम लोग साधारण मनुष्यो मे से नहीं है। हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है। यही कारण है कि इस वश को आज तक कभी पतन का दु:ख नही देखना पड़ा।

विजय—ठीक है। मेरी ही समस्या को लो। आज तक उन्ही नियमो का पालन किया। आज न जाने कहाँ से यह सब हो गया?

राव साहब—मुझे डर है कि प्रद्युम्नकुमार हमारे इस वंश की रक्षा न कर सकेगा। वह अंग्रेजी पढ़कर तहसीलदार हो गया हे। मेरे मना करने पर भी वह राजकुमार कालेज मे पढ़ने गया था। हमारे घर मे कोई भी घर से बाहर पढ़ने नही गया। सदा घर पर ही अध्यापक रखकर पढ़ाया जाता रहा है, केवल इसलिए कि मर्यादा भग न हो। बाहर का वातावरण तो विष से भरा होता है न, मुन्शी?

मुन्शी—सच है हुजूर !

राव साहब—न जाने कौन क्या कह दे, क्या परिस्थिति हो ? हम लोग साधारण मनुष्य नही है, इसलिए अखबार नही मँगाते। मैने आज तक कोई समाचार-पत्र नहीं पढ़ा।

विजय—मैंने भूल से एक-दो बार समाचार-पत्र पढ़ा था। तभी मैंने देखा कि समाचार-पत्रो मे बहुत-सी बातें झूठ होती है। उदाहरण के लिए यह कि अमुक देश मे अकाल पड गया, हजारो लोग भूखो मर गए। भला यह कोई बात है ! उस जगह का अनाज कहाँ गया ? 'देश मे हजारो की सख्या मे बाल-विधवाएँ है—बाल-विधवाएँ !' मैने नही सुना हमारे नगर मे दो-चार भी बाल-विधवाएँ हो। इन समाचारो से लाभ क्या है, मैं पूछता हूँ ? एक बार किसी ने लिखा कि आदमी हवाई जहाज से उड़ सकता है, भला यह भी विश्वास करने की बात है कि आदमी उडने लगे ? आखिर कौनसी चीज है जिस पर बैठकर आदमी उड़ेगा ?

मुन्शी—गप है, बिल्कुल गप है। न जाने क्यो सरकार ने इस पर रोक-थाम नही लगाई ?

राव साहब—भाई कलियुग है । कलियुग में जो न सुनने में आए सो थोड़ा है। शिव ! शिव ! न जाने क्या होने वाला है ? सुना है रेल नाम की कोई चीज बनी है जो जल्दी ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है। मै कहता हूँ कि हमें इधर-उधर जाने की आवश्यकता क्या है ? हमारे घर में क्या नहीं है ?

बिजय—एक बार एक अँग्रेज हमारे घर आ गया। (पिता से) जिन दिनो आप तीर्थ-यात्रा को गये थे। तब मै बड़ी दुविधा मे पड़ गया। क्या करूँ ? कहाँ बिठाऊँ ? मैने बाहर दालान मे तख्त बिछवाए; गद्दी, कालीन, तकिये ठीक तरह जमा दिए। वहाँ मै उससे मिला। उसके बाद सारा घर गोबर से पुतवाया,

सब कपड़े धुलवाए, गंगाजल छिड़कवाया; तब कही जाकर घर पवित्र हुआ। घर की मर्यादा है !

मुन्शी—मैं भी तो था।

राव साहब—मुझे गर्व है तुम जैसे पुत्र मेरे घर हुए। फिर भी इस कमरे मे तो ऐसे अनजान को आने का अधिकार ही नही है। अच्छा हुआ उसने हमारे पूर्वजो के चित्र देखने का आग्रह नही किया, नही तो बड़ी कठिनाई आती।

विजय—उसने कहा था कि हमे अपना घर दिखाओ। मैने कहा—पिताजी नही है, मकान की चावी उनके ही पास है। वह तीर्थ-यात्रा को गये है। मै स्वयं उससे दूर एक ओर तख्त पर बैठा था। जब उसने मिलाने को हाथ उठाय तो मैने दूर से ही हाथ जोड़ दिए, उसके पास नही गया। फिर भी मैने सब कपड़ो के साथ स्नान किया। क्या करता ? अँग्रेज नाराज़ हो जाता तो न जाने क्या होता ?

राव साहब—अब न जाने क्या होने वाला है ! हम लोगो को अपनी मर्यादा नही छोड़नी चाहिए, विजय !

(एक नौकर का प्रवेश।)

नौकर—(तीन बार सबको सलाम करके) श्रीमान्, छोटे राजा पधार रहे है।

राव साहब—प्रद्युम्न ! प्रद्युम्न आया है क्या ? अच्छा !

विजय—आज ठीक तीन वर्ष बाद लौट रहा है, न जाने कैसा होगा ?

मुन्शी—अब अँग्रेज़ों से बात करने में हमें सुविधा होगी।

(प्रद्युम्नकुमार का प्रवेश, चालीस वर्ष की वयस, कोट-पतलून पहने, सिर पर टोप। उसे देखते ही जैसे लोग उसे पहचानते नहीं हैं। आश्चर्य से अभिभूत केवल पिता को ही प्रणाम करता है और किसी को नहीं।)

प्रद्युम्नकुमार—(केवल हाथ जोड़ता हुआ जूते उतारकर पिता के

पास आ जाता है। चोगा और पगड़ी उसके सिर पर नहीं है। यह उन लोगों के लिए आश्चर्य की बात है।) मेरा तबादला दूसरी जगह हो रहा था, मैंने सोचा चलूँ आपसे मिल लूँ। कहिए आपका स्वास्थ्य कैसा है? और भैया तुम? तुम्हारे भी बाल सफेद हो रहे हैं। आजकल बड़ा काम रहता है—या तो भाग-दौड़ या फिर दफ्तर का ढेरों काम। सिर उठाने को भी समय नहीं मिलता। आप बड़ी हैरानी से मेरी ओर देख रहे हैं? ओह समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप नहीं उतारा। ठीक कायदा यह है कि जब अपने से बड़े के सामने जायँ तो टोप उतार लेना चाहिए। बात यह है कि जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ मुझसे बड़ा कोई नहीं है, इसलिए जब कोई बड़ा अफसर आता है तो मुझे टोप उतार देना होता है। (टोप उतारकर) क्यों, आप कोई बोल नहीं रहे हैं, क्या बात है? समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप पहन लिया है, अँग्रेज बन गया हूँ। क्या किया जाय पिताजी, अँग्रेजों के साथ रहकर ऐसा करना पड़ता है। न करूँ तो गाँव वालों पर रोब न जमा पाऊँ। रही चोगे की बात, वह तो वहाँ पहनना तमाशा ही होता है। मैं मजबूर हूँ।

(राव साहब सिर हिलाते हैं जैसे अभी ढुलककर गिर पड़ेंगे और मुन्शी आँखें फाड़कर देखता है।)

विजय—तुमने वंश की मर्यादा नष्ट कर दी प्रद्युम्न! तुम पिता के सामने इस वेश में आये? आने से पहले तुम्हें दो बार सोच लेना चाहिए था। अच्छा होता यदि तुम न आते।

प्रद्युम्न—(आश्चर्य से) सुनो भैया, मैं क्यों न आता? यह मेरा घर है, मेरी जायदाद है। मैं क्यों न आता? मैं रंडियों की-सी पेशवाज़ पहनकर कचहरी नहीं कर सकता, सिर पर व्यर्थ का गट्ठर नहीं रख सकता। समय बदल गया है, हमको भी बदलना चाहिए। क्या रखा है इन पुरानी बातों में?

विजय—तो तुम्हारे विचार मे पुरानी बातें बुरी होती है। तुम्हारा शरीर भी तो चालीस साल पुराना हो गया है, उसे क्यो नहीं छोड़ देते ?

(पिता और मुन्शी इस तर्क पर प्रसन्न होते हैं।)

प्रद्युम्नकुमार—यह भी विचित्र तर्क है। क्या शरीर छोड़ना-न-छोड़ना मेरे हाथ मे है ? उस ईश्वर ने शरीर दिया है, जब चाहेगा तब ले लेगा। जब उसे लेना होता है तो वह यह थोड़े ही देखता है कि शरीर नया है या पुराना।

(दोनो उदास हो जाते हैं।)

विजय—तब यही कैसे कह सकते हो कि पुरानी बातें बुरी है। हम भी तो, पिताजी भी तो मनुष्य है, हमे यह बातें बुरी नहीं दिखाई देती।

प्रद्युम्नकुमार—आप लोग घर मे रहते है। मुझे बाहर आना-जाना होता है, लोगो से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे समय के साथ चलना होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी मे भी चलता हूँ।

राव साहब—(आश्चर्य से) पैदल भी ? न जाने क्या होने वाला है इस घर का ? (तकिए पर मुँह लटकाकर गिर पडते हैं।)

विजय—(एकदम दौड़कर पिता को सँभालता है, मुन्शी पखा करता है।) बड़ा अनर्थ हो रहा है। देखो, देखो प्रद्युम्न, पूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे है। उनके होठ क्रोध से हिल रहे है। कमरे का वातावरण गुम-सुम हो गया है। हमारी वाणी सूखी जा रही है। क्या तुम कुछ भी नही देखते ? अच्छा तुम इस घर से चले जाओ।

(राव साहब होश मे आते है। प्रद्युम्न उनकी तरफ देखता है, देखता ही रहता है। फिर एक बार चित्रो की तरफ देखता है। इतने मे एक लड़की—प्रद्युम्नकुमार की—जो लगभग १० वर्ष की है, कमरे मे दौडती हुई आ जाती है। कन्या एक फ्रॉक पहने है, अँग्रेजी ढङ्ग के बाल

कटे हैं। टाँगें खाली, जूते पहने चली आती है, उसके साथ उसकी ईसाई अध्यापिका भी घुसती है। दोनो जूते पहने भीतर आ जाती हैं और लड़की उसे सब चित्र आदि दिखाती है।)

कान्ता—देखती हो मिस साहब, ये मेरे बाबा है। बाबा, ओ बाबा!

कान्ता—(बाबा के पास दौड़ती हुई, रुककर) ये हम लोगो के बाप दादो की तस्वीरे। अरे बाबूजी, आप भी बैठे है, गुम-सुम, चुपचाप।

मिस—(आश्चर्य से देखकर) वेरी स्ट्रेञ्ज ड्रेस! हाऊ आकवर्ड इट लुक्स?

(सब लोग चित्र-लिखे-से रह जाते हैं मानो उन्हे काठ मार गया हो। जैसे ही वे कमरे में आने लगी थीं एक नौकर उन्हे रोकने आया था, किन्तु साहस न होने के कारण बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया, वहीं खड़ा रहता है।)

विजय—कान्ता, बाहर जाओ, जाओ बाहर।

मुन्शी—मिस साहब, बाहर जाइए।

राव साहब—न जाने क्या होने वाला है? आज स्वप्न सत्य हो रहा है! मै अब और...(सिर लुढक जाता है) और न ही (डर से दोनों स्त्रियाँ बाहर चली जाती हैं। लोग राव साहब को सँभालते हैं। प्रद्यम्न भी पिता के पास आता है।) तुम मुझे मत छुओ, प्रद्युम्न! हाथ मत लगाओ। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले जाना। मेरे पिता, पितामह, प्रपितामह इसी कमरे में मरे थे—इन्हीं आसनो पर। यही वश की मर्यादा है। (हाथ चित्रो को प्रणाम करने के लिए उठते हैं।) नही, अब और नही। सब समाप्त हो चुका।

वं श की म र्या दा

(मर जाते हैं। लोग चित्राभिभूत-से खड़े रहते हैं।)

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

अशोक वन

पात्र

रावण—लका का प्रतापी राजा, श्रीरामचन्द्र का शत्रु (अधेड)

जानकी—श्रीरामचन्द्रजी की धर्मपत्नी (युवती)

चित्रांगदा— } रावण की रानियाँ (प्रौढ)
मन्दोदरी }

सुनन्दा—रावण की दासी (किशोरी)

[अशोक वन मे जानकी के निवास की रामायण वाली कथा। रावण जानकी के पास अकेले नही, अपनी रानियो के साथ गया था। अपने मन पर अकुश रखने के लिए वह अपनी रानियो के साथ गया था। सीता के हृदय मे वह श्रीरामचन्द्र को पराजित करना चाहता था, जो सम्भव न हो सका।]

नही है सुनन्दा ! वीर पति की वह

सुनन्दा—पर वह आपको अपने से सुन्दर कह रही थी।

जानकी—यह उसकी कृपा है । दस महीने से पति के विरह मे आँसुओ मे मेरा रूप क्या बह नही गया, सुनन्दा ? क्या सचमुच मै अभी सुन्दर लगती हूँ ? उँह, जाने दो, मैं कैसी हूँ, क्या हूँ, जानकर क्या करूँगी ?

सुनन्दा—क्या देख रही है राजरानी ?

जानकी—वह कपोत का जोड़ा पंछी भी प्रेम करते है । मनुष्य ने कभी प्रेम का पहला पाठ इन्ही से पढ़ा होगा । पंछी का भी एक जोड़ा

सुनन्दा—सबका एक ही जोडा होता है देवी !

जानकी—कहाँ ? तुम्हारे लकापति के यहाँ कितनी स्त्रियाँ है ? कहते है कि कोई जानता ही नही कि कितनी स्त्रियो से उन्होने प्रेम किया होगा । त्रिजटा से मैने कल पूछा था ।

सुनन्दा—वह तो बढ़-बढ़कर बोलती है । कुछ उल्टा-सीधा कहा होगा ।

जानकी—तुम जानती हो तो फिर बोलो ।

सुनन्दा—(असमञ्जस) मै मै महारानियो का नाम मै बता दूँगी ।

जानकी—त्रिजटा भी महारानियो का ही नाम जानती है । पर रावण ने कुल कितनी स्त्रियो पर अब तक कृपा की है, कोई नही जानता । तुम्हारी माता महारानी मन्दोदरी की प्रधान सेविका है । माया ने अपनी कन्या के साथ जो एक सहस्र किशोरी दासियाँ दी थी उनमे तुम्हारी माता भी थी ।

सुनन्दा—हाँ देवी, तब से वे बराबर रावण के रनिवास मे रह गईं ।

जानकी—जानती हूँ मैं । इन्द्रजयी मेघनाद तुमसे बड़ा है ।

मन्दोदरी के पेट से पैदा हुआ वह इस सोने की लका का युव-राज है और कपिला के पेट से पैदा हुई तुम अपने को दासी कहती हो । दोनो ही का पिता रावण है। देख रही हो अपना और मेघनाद का अन्तर !

सुनन्दा—नहीं-नहीं. .ऐसा नही देवी ! कोई सुने तो

जानकी—रावण का प्रताप किसी को सुनने और सोचने न देगा। इन्द्र को जीत लेना मेघनाद के लिए सरल था, पर इन अनीतियो की ओर उँगली उठाना उसके लिए भी सरल नही है।

सुनन्दा—इसी लिए छोटे भाई विभीपण से उसकी नही पटती ।

जानकी—सुना है विभीषण अकेला ही इस लंकापुरी मे विचारवान् है, पर शक्ति विचार की बात सुनती कब है ?

सुनन्दा—यह सब नहीं देवी, मुझे डर लगता है ।

जानकी—इसी डर को तो आर्यपुत्र ने हटाना चाहा और आज मेरी यह दशा है ।

सुनन्दा—सुनते है, अब आप भी रनिवास में चलेंगी ।

जानकी—वहाँ मेरे पैर धरते ही रनिवास जल जायगा, सोने की लंका जल जायगी । सुनन्दा, मैं जो यह कपोत का जोड़ा देख रही थी इसे मैने पञ्चवटी मे भी देखा था। आर्यपुत्र ने हँसकर कहा था, पिछले जन्म मे हम दोनो कपोत के जोड़े थे । मै हँसते-हँसते उनकी जाँघ पर लेट गई थी। इस कपोत के जोड़े मे इनके मान-मनुहार मे प्रेम की रागिनी को सुनती हूँ । (सिसकी)

सुनन्दा—हाय-हाय ! नही, नहीं ! ऐसे नही देवी ! रोने से क्या होगा ? अब इन आँखों से आँसू....कमल मोती बरसा रहे है । राजरानी जानकी...

जानकी—जब अपना बोझ नही सहा जाता सुनन्दा,

आँसुओ से हल्का होता है। जिस दिन मेरी आँखो से आँसू रुक जायँगे, उनमे लपट निकलेगी। उसमे यह अशोक वन जल जायगा, यह सोने की लंका जल जायगी। जिसे कुबेर से तुम्हारे राजा ने छीन लिया, जिसमे इन्द्र बँधकर आया, जिसके नाम से ही संसार थरथराता है, जिस लंका ने अमरावती के वस्त्र छीनकर उसे नंगी बना दिया है, वही लंका जलेगी, सुनन्दा, जलेगी।

सुनन्दा—मै भाग जाऊँगी देवी, आपकी बातो से मै डर रही हूँ।

जानकी—नही-नही तुम्हे डराना मै नही चाहती। बैठो, यहाँ मेरे पास। आज यह अशोक वन इतना सूना क्यो है? लंका के किशोरो और किशोरियो की यह रंगभूमि आज ऐसी गुम-सुम क्यो है? रुनझुन, छमछम, यहाँ प्रिये, वहाँ प्राण, यह सब आज कहाँ गया? तुम्हारी लका मे सुन्दरियाँ भी है सुनन्दा, और प्रेम भी है।

सुनन्दा—आप नही जानती राजकुमारी!

जानकी—नही, क्या बात है, कहो। अब तक तो बस इधर इस एक अशोक-कुञ्ज को छोड़कर यह सारा वन इन्द्रधनुष बन जाता था, जिसमे वस्त्रो के रङ्ग-रूप और अलकारो की ज्योति होती थी। पिछले दस महीनो मे किसी भी ऋतु मे, बरसात मे भी ऐसा दिन कोई नही गया जब इस अशोक वन मे लंका का मद न छलकता रहा हो। मुझे तो कई बार ऐसा लगा कि मद के इस समुद्र मे अकेली मै एक विष की लहर हूँ।

सुनन्दा—तब क्या? आप विष की लहर है तो अमृत कहाँ होगा?

जानकी—होगा कहाँ! चन्द्रमा में, और उतनी दूर जाने मे तुम्हे डर लगे तो फिर राजवधू सुलोचना में देख लो। महा-

रानी मन्दोदरी और चित्रांगदा मे कभी रहा होगा। किसी भी किशोरी मे रहता है सुनन्दा, तुममे भी है।

सुनन्दा—मुझमे भी है!

जानकी—तुम्हे नही दिखाई देगा। जिस दिन कोई तुममे वह देख लेगा

सुनन्दा—चलिए, हटिए, नही बोलती आपसे।

जानकी—मुझसे भाग्य ही रूठा है सुनन्दा! मै रघुवश की वधू इस अशोक वन मे ऐसी बन्द हूॅ कि रात को आकाश के तारे और दिन को पेड़ो के पक्षी। राक्षसराज का अनुग्रह है कि नित्य कोई सखी भेज देते है।

सुनन्दा—इस लंका की दासियॉ आपकी सखी है? और जब रनिवास मे सबसे ऊॅचे मणियो के आसन पर बैठेगी तब भी सखी मानेंगी?

जानकी—मेरा रनिवास अयोध्या मे है सुनन्दा, इस लंका मे नही।

सुनन्दा—वह भी सोने की है?

जानकी—नही सोने का रनिवास वहॉ होता है जहॉ दूसरो को लूटकर, दूसरो को बिगाड़कर धन कमाया जाता है; जहॉ एक मनुष्य या एक परिवार अनेक मनुष्यो का रक्त चूसता है। इस लंका की नीव मे रक्त है। अयोध्या मिट्टी की बनी है—उस मिट्टी से जिसके गर्भ से सोना भी निकलता है। तुम्हारी ऑखो मे सोना जो समा गया है इसलिए तुम मिट्टी का मोल न जान सकोगी। हॉ, मन आज उड़ा जा रहा है। कही टिकता नही सुनन्दा! क्या कहने को, क्या कहने लगती हूॅ।

सुनन्दा—मन के भी पंख है, वह भी उड़ता है!

जानकी—क्या कह रही थी, यह अशोक वन क्यो सूना है?

सुनन्दा—मै तो भूल ही गई। आपकी बातो मे कुछ टिकता ही नही, सब भूल जाती हूँ।

जानकी—तो अब न भूलो, कहो अब

सुनन्दा—राजा ने आज इधर का रास्ता बन्द करवा दिया है। कोई भी आज अशोक वन मे नही आ सकेगा। रास्ते से ही सब लौट रहे है। सबके मुख पर जैसे उदासी नाच रही है।

जानकी—ऐं, क्या बात है ? लंकेश मुझे अब किसी का मुख न देखने देगे; किसी की मीठी बोली मेरे कान मे अब न पडेगी। चिन्ता नही, देवजयी रावण को इस अशोक वन मे एक अबला से हारना होगा। हारना होगा, सुनन्दा! गॉठ बॉध लेना यही होगा।

सुनन्दा—ऐसे कॉप रही हो देवी, जैसे केले का पत्ता कॉपता है या जल मे कमल कॉपता है। और हाथ से यह छाती क्यो दबा रही हो ? है, है, कही कोई पीड़ा है देवी ? वैद्य को कहूँ तब

जानकी—इस पीड़ा की दवा किसी वैद्य के पास नही है सुनन्दा! पचवटी मे देवर लक्ष्मण ने धनुष की नोक से जो गोल घेरा बना दिया था उसे भी यह अभागा

सुनन्दा—ऐसा साहस! राजरानी सीता, इन्द्र, यम, कुबेर, मरुत लंकापति को गाली नही दे सकते।

जानकी—उन्हे तुम्हारे लंकापति का भय है। जानकी भी कभी मृग के छौने से भागती थी, पर अब वह काल की ऑखो से ऑखें मिला लेगी। तुम्हारे लंकेश मेरी ओर देख भी नही सकते, सुनन्दा! फिर भी खेद है मैने उनके लिए अभागा शब्द से काम लिया। अपना शील, अपनी मर्यादा मुझे न छोड़नी चाहिए। क्रोध अन्धा बना देता है, विचार उड जाता है। क्षमा करना बहन! जानकी अपने वैरी का मगल चाहेगी। इस लंका मे सब

ओर से विवश, क्रोध से नहीं, शील से, सयम और सन्तोष से मेरा भला होगा। यह अशोक वन जैसा अब रात को रहेगा वैसा ही दिन को।

सुनन्दा—कौन कहे देवी, कल क्या होगा? बड़े-बूढ़े कहते है, यहाँ जो कभी नही हुआ वही हो रहा है। समुद्र किनारे पर चढ़ रहा है। यह लका कभी डूब जायगी।

जानकी—समुद्र किनारे पर चढ़ रहा है?

सुनन्दा—तो आप कभी सागर-तट नहीं गईं। इस अशोक वन के दक्षिण मे समुद्र है। जो पेड़ किनारे मे सौ गज भीतर लगाये गए थे अब उतनी ही दूर पानी मे चले गए है।

जानकी—समुद्र भी अपनी सीमा छोड़ रहा है तो फिर रावण को दोष क्या दे?

सुनन्दा—पर कहा यही जा रहा है कि रावण के पाप से यह हो रहा है। आप कहती है कि लंका जल जायगी और यहाँ तो लोग कहते है कि लंका डूब जायगी। आज ही महारानी चित्राङ्गदा से एक ज्योतिषी बाबा कह रहे थे कि लंका पर भारी सकट आ रहा है।

जानकी—तब?

सुनन्दा—तब रानी उदास हो उठी। और हाँ, मै तो भूल गई। वह आज यहाँ आएँगी।

जानकी—यहाँ आएँगी, महारानी चित्राङ्गदा!

सुनन्दा—कहा था, विदेह-नन्दिनी से कह देना, आज उनके दर्शन करूँगी।

जानकी—आज यहाँ सब क्या हो रहा है सुनन्दा? कहो, तुम कुछ जानती हो?

सुनन्दा—नही देवी, मै कुछ नही

जानकी—कोई नया छल, नया जाल? सुनन्दा, इस

अशोक वन मे आने का रास्ता बन्द है। रानी चित्राङ्गदा मेरे दर्शन को आ रही है। यहाँ की वायु मे दम घुट रहा है। यह लका ससार को पीसने के लिए नित्य नया चक्र बनाती है। आज भी कोई चक्र बन रहा है और क्या यह चक्र आज मेरे लिए तो नही है ?

सुनन्दा—महारानी चित्राङ्गदा की दया इस लंका मे कौन नही जानता ?

जानकी—तो महारानी दस महीने कहाँ रही ? आज ही अशोक वन मे किसी के आने की आज्ञा नही है और आज ही वे महारानी यहाँ आ रही है। क्या समझा जाय सुनन्दा ? फिर भी क्या कहा था उन्होने, कैसे ? याद करो जैसे कहा था उन्होने

सुनन्दा—रानीजी, आप साँस ऐसे क्यो ले रही है ? छाती के भीतर धौंकनी चल रही है। महारानी चित्राङ्गदा कभी किसी का बुरा नही करती।

जानकी—किसी का नही करती, पर मै उनके शत्रु की स्त्री जो हूँ। मुझ पर भी वे दया कर सकेगी ? जो होगा देखूँगी सुनन्दा ! नीचे धरती भी रहेगी, ऊपर आकाश भी रहेगा। इस अशोक वन मे लाल फूल बहुत होगे और लाल हो जायँगे।

सुनन्दा—आप डर रही है।

जानकी—नही तो, डर तो मुझे अब यमराज के भैसे की घण्टी भी न दे पाएगी। जो अब तक न हुआ, आज हो रहा है। कैसे कहा उन्होने, रानी चित्राङ्गदा ने क्या कहा मेरे लिए ? ऐसे कहो कि मेरे कान उन्ही की बातो को सुन रहे हो।

सुनन्दा—उनके भवन मे बूढ़े ज्योतिषी को घेरकर हम लोग खड़ी थी। उन्होने पूछा, आज अशोक वन मे किसे जाना है ? मै जा रही हूँ महारानी, मैंने कहा।

जानकी—तब

सुनन्दा—तब वे मुस्कराकर मेरी ओर देखती रही और बोलीं, कह देना विदेह-नन्दिनी से, आज मै उनके दर्शन करूँगी।

जानकी—उनकी आँखो मे क्या था, देखा

सुनन्दा—आँखो मे क्या था ? क्या होता है आँखो मे ? आँखें थी और क्या, आँखे किरकिरी भी नही सह पाती।

जानकी—फिर भी आँखो मे समुद्र होता है, आकाश होता है, आग होती है सुनन्दा ! आँखो मे अमृत और विष भी होते है; आँखो मे जो कुछ भी इस धरती पर है सब रहता है।

सुनन्दा—हो हो कौड़ी-भर आँख मे समुद्र, आकाश है। हूँ तो फिर महारानी की आँखो मे क्या था, ऐं ऐं समुद्र बडा है कि आकाश, जो बडा हो वही।

जानकी—यहाँ इस लोक मे विस्मय की कमी नही है। चित्राङ्गदा यदि मुझे कन्या बना ले, बेटी का बोल एक बेर बोल दे, मेरा पुण्य जो कभी भी सहाय न हुआ बस आज एक बार सहाय हो तो फिर इस लंका का ही नही इस संसार का यह सबसे बड़ा विस्मय आज होगा सुनन्दा ! मेरे कानो में कोई यह कह रहा है, बेटी जानकी ! किसकी बोली है यह ? किसकी ? महारानी चित्रागदा की या किसी दूसरे की ?

सुनन्दा—अरे, अरे ! सचमुच आप सुन रही है देवी, कोई कह रहा है ?

जानकी—तुम नही सुन रही ! 'पुत्री जानकी' 'बटी जानकी' इस सारे अशोक वन मे गूँज रहा है। धरती के भीतर से यह ध्वनि, ऊपर आकाश से यही ध्वनि; कोयल की कूक से मीठी, वीणा की रागिनी से मोहक, किसकी ध्वनि है यह सुनन्दा, जिसमे प्राण ऐसा नाच रहा है कि भँवर मे नाव ?

सुनन्दा—भँवर मे नाव फिर, जो डूब जाय।

जानकी—तब प्राण डूब जायगा।

सुनन्दा—और तब क्या होगा देवी ?

जानकी—इसके बाद भी कुछ होता है रे ! प्राण के डूब जाने पर कोई नही, कोई नही कहेगा सुनन्दा ! तब क्या होता है ? प्राण के डूब जाने पर वियोग की आग बुझ जाती है, शोक और पीड़ा छू-मन्तर हो जाती है, और भी कुछ होता है कुछ ऐसा, जिसका स्वाद कहा नही जाता।

सुनन्दा—जो शब्दो मे नही साँसो मे बहता है, ऐसे सांस लेकर कोई कब तक जियेगा ?

जानकी—मै मरूँगी नहीं। मुझसे डरकर मृत्यु ही भाग जायगी। विदेह की पुत्री और दशरथ की वधू, जो कभी वन के चित्र से भी डरती थी, दण्डकारण्य का कोना-कोना छान चुकी है। जिसके पैर पर्वतो के सिरो पर और अगम्य नदियो के जल मे पड़े है, सिह की आँखो से जिसकी आँखें मिलीं; कन्द-मूल का जिसने आहार किया। कितना देखा और अभी कितना देखूँगी सुनन्दा। ब्रह्मा ने जिस दिन मुझे रचा होगा उनके हाथ थक गए होगे। (नेपथ्य मे—ऐसी रचना बार-बार नही होती। एक ही जानकी के बनाने मे विधाता की सारी कलाएँ लग गईं। न कोई दूसरी जानकी बनी थी अब तक और न अब बनेगी। जब तक यह सृष्टि चलेगी वैदेही, तुम नारी-महिमा की मेखला रहोगी। तुम्हारा नाम लेकर, देवी, पतिव्रता की धार पर स्त्रियाँ चढ़ेंगी।)

जानकी—ऐ सुनन्दा ! अमृत की यह वर्षा, इस लंका में पार्वती, शची, लक्ष्मी या माता धरती इस रूप में

चित्राङ्गदा—पार्वती, शची, लक्ष्मी या माता धरती नही, सौभाग्यवती, इस धरती की धूल से बनी चित्रांगदा, जिसकी रचना मे ब्रह्मा ने दो बार टेढ़े-मेढ़े हाथ चला दिए थे।

जानकी—(गद्गद कण्ठ से) नही माँ, ऐसा नही । तुम्हे देख-कर पार्वती, शची और लक्ष्मी की कल्पना रूप धर लेती है ।

चित्रांगदा—यह भार मेरे मान का नहीं है, किसी भी स्त्री के मान का नही । सुनयना ने तुम्हे जन्म दिया था, फिर भी मै कहूँगा, यह भार उनसे भी न चलेगा । तुम्हारी माँ अब केवल यह धरती हो सकेगी, जिसके विस्तार मे तुम्हारा विस्तार, जिसकी क्षमा मे तुम्हारी क्षमा, जिसके स्नेह मे तुम्हारा स्नेह और जिसके धैर्य मे तुम्हारा धैर्य है, और तुम मेरा सकट जानती हो, नही तो फिर जैसे पत्थर महादेव बनता है मै तुम्हारी माँ भी बन जाती ।

जानकी—महादेव भी संकट मे है जिनके संकेत पर त्रिलोकजयी लंकापति

चित्रांगदा—यही मेरा गर्व है । मै अजय प्राणनाथ की प्रिया हूँ । रूप और पौरुष, तपस्या और शक्ति मे जो इस जगत् मे अकेले है ।

जानकी—तब यह सकट ?

चित्रांगदा—वह मुझे ही कहना पडेगा ? दस महीने से नित्य क्या तुम नही सुन रही हो कि राक्षसराज तुम पर अनु-रक्त है ?

जानकी—क्या उन्होने कभी कहा ? महात्मा रावण को मै कलंक नही लगाऊँगी ।

चित्रांगदा—उन्होने नहीं कहा, किन्तु दासियो ने ? उनकी ओर से जो बार-बार तुम्हारे शृङ्गार का आग्रह हुआ, प्रसाधन की वस्तुएँ जो यहाँ नित्य आती रही ? इस अशोक वन के पत्ते-पते ने, पक्षी-पक्षी ने, रात को चन्द्रमा और तारो-भरी रात ने क्या यह तुमसे नही कहा ? मेरे पति जिसके प्रेम मे घुले जा

रहे है, वह मेरी सखी हो सकेगी, बहन हो सकेगी, किन्तु पुत्री कैसे ?

जानकी—देवाधिदेव शंकर की उपासना और इन्द्रजयी पुत्र के विक्रम से राक्षसराज की कामनाएँ नही मिटी ? माता, क्या कह रही हो तुम यह

चित्रांगदा—छाती पर पत्थर रखकर कह रही हूँ। पति की कामना में योग देना नारी का सबसे बडा धर्म है।

जानकी—तो आज तुम इसलिए आईं ? नही-नही, विश्वास नही होता देवी! राक्षसराज की कामना में योग देना तुम्हारा सबसे बडा धर्म है और मेरा क्या है ?

चित्रांगना—अपने धर्म की बात मै जानती हूँ, तुम्हारे धर्म की बात जो मै तुमसे कहूँ तो वह पति की कामना के विरोध में होगी।

जानकी—बस-बस माँ, कह दिया तुमने मुझसे मेरा धर्म, जाने दो, जो स्थान आर्यपुत्र से भरा है उसका सपना भी विजयी रावण न देख सकेंगे।

चित्रांगदा—नारी का सबसे बडा बल और विश्वास यही है देवी!

जानकी—इसी बल और विश्वास से किसी भी दिन राक्षस-राज का मद मै उतार दूँगी। इस शरीर की दो ही सीमाएँ है—जन्म और मृत्यु। एक मै पार कर चुकी हूँ, दूसरी पार कर लूँगी, यदि रावण के अमोघ शस्त्र कभी इस शरीर पर भी पड़ें। महावीर नारी-वध कर आप ही मर जायगा।

चित्रांगदा—कभी नही। लंकेश इन्द्रियजयी है, वे अनाचार नही करते।

जानकी—तब फिर वे ऐसा स्वप्न क्यो देखते हैं ?

चित्रांगदा—उन्हे विश्वास है, उनके रूप, गुण, विभव और

बल पर तुम किसी दिन मोहित होकर रहोगी।

जानकी—और तब मै उनसे प्रणय-निवेदन करूँगी ?

चित्रागदा—शब्दो से न सही, अनुभव और चेष्टा से।

जानकी—ऐसा है ? आर्यपुत्र का रूप तब उन्होने नहीं देखा। गुण और बल भी किसी दिन देख लेंगे।

चित्रांगदा—अपने युग के दो सबसे प्रतापी पुरुष एक स्त्री के लिए संग्राम करेंगे; जिसकी जीत होगी स्त्री उसी की होगी।

जानकी—तब कहो कि स्त्री भी भूखण्ड है, धन की पिटारी या मणिमाला है, जो जीतेगा उसे उठा लेगा। उसकी न कोई रुचि है न कामना। वह चेतन भी नही है। अयोध्या का राजपाट छोड़कर जो पति के साथ वन को चल पड़ी, पति का प्रेम ही जिसका विभव रहा, वह किसी दिन वैभव की चमक मे अपनी आँखें फोड़ लेगी। शस्त्र से नारी का हृदय नही जीता जाता, देवी !

चित्रांगदा—ये ही बाते कह सकोगी उन देवजयी से.....

जानकी—देवजयी ? उनके लिए अब यह प्रशस्ति पौरुष की विडम्बना है, देवी ! जिसमे इतना सयम नही, जो दूसरे की विवाहिता का प्रेम चाहता है।

चित्रांगदा—मै तुम्हारे पति की निन्दा नही करती।

जानकी—मै भी निन्दा के लिए नही, सत्य के लिए कह रही हूँ। अब तक तो रावण से मै डरती थी, किन्तु अब नहीं। पंचवटी मे डरी थी। मन कड़ा नही था। इस लंका में न डरूँगी।

चित्रांगदा—उनकी ओर तुम देख सकोगी ?

जानकी—जो मेरे प्रेम के मोह में डूब रहा है, उसकी ओर देखना नारी की मर्यादा के विरुद्ध होगा। पर-पुरुष की ओर देखती भी नहीं देवी ! फिर भी उस घडी मनोबल से काम लेना होगा। राक्षसराज विजयी है, बली है, दया और नीति में भी

उन पर सन्देह नहीं। मेरे साथ उनका कोई भी व्यवहार उद्धत या अशिष्ट न हुआ। मेरे अभाग्य की यह अन्तिम कड़ी है देवी, कि आर्यपुत्र के शत्रु लंकापति बन गए। इन दोनो महापुरुषो के वैर का कारण मै हूँ।

चित्रांगदा—ऐसी ही होनी थी। होनी कब टली है?

जानकी—पुरुष अधिकार और अहंकार मे युद्ध करते है। नारी चुपचाप यह सहार देखती है। हम दोनो में किसी को विधवा तो होना ही है, इस युद्ध का यही परिणाम होगा। क्या हम यह देखती रहेगी? तुम चाहो तो यह रोक सकती हो माँ ..

चित्रांगदा—किस तरह बेटी? नारी राजनीति मे नही पडती। हाय, क्या कह गई?

जानकी—माँ! तुमने मुझे बेटी कह दिया। मेरा पुण्य सहायक हो गया, तुम्हे देखते ही माता सुनयना की याद पड़ी थी। तुम दोनो जो एक ठौर रहो तो पहचानना कठिन होगा।

चित्रांगदा—कैसा जादू मुझ पर हो गया? मैने बटी कह ही दिया।

जानकी—और इसका दु ख तुम्हारी आँखो मे उतर आया है माँ! साँस मे होकर भी यही दु ख बह रहा है। सुनन्दा, कहा था मैने यही न?

सुनन्दा—हाँ देवी! पैर धरती पर डगमगा रहे हैं। आप तो कह रही थीं, महादेवी आपको बेटी कहेगी; कह दिया उन्होंने। आप जादू जानती है।

जानकी—(हँसते हुए) देख लो मेरी और महारानी की ओर। क्या मै इनकी बेटी नही लगती? इनकी आँखो-सी मेरी आँखें हैं। नाक, होठ, क्या नही है इनके साँचे का मेरा? ठीक से मिलाकर तो देख। इनकी आयु के प्राय. चालीस सवतसर और

मेरे अठारह । माता और पुत्री की आयु का यही अन्तर भी होता है ।

चित्रांगदा—तो अब मै कहूँगी बेटी, कहती ही रहूँगी, बेटी जानकी !

जानकी—भाग्य के मुँदे किवाड़ खुल गए, माँ !

चित्रांगदा—पर मैंने तो पति के साथ विश्वासघात किया ।

जानकी—कभी नही माँ ! पति को वासना से रोकना भी पातिव्रत है ।

चित्रांगदा—पर वे यह न मानेंगे ।

जानकी—अब यह मुझ पर छोड़ दो । मै उन्ही से पूछूँगी, क्या उनका अनुराग वात्सल्य न हो सकेगा ?

चित्रांगदा—वे अभी आएँगे । मैंने उन्हे बुलाया है यहाँ । किस कामना मे आएँगे वे और यहाँ तो यह धरती उलट गई ।

जानकी—हाय माँ, तुम भी हमे छलने आई थी अबला होकर ? नारी भी नारी के साथ छल करती है ?

चित्रांगदा—यदि नारी की सहायता न हो तो पुरुष नारी को छल नहीं सकता । जहाँ कही भी नारी छली गई, किसी-न-किसी नारी के कारण । पुरुष ससार जीत सकता है, सिह और मतवाले हाथी को वश मे कर सकता है, किन्तु नारी उसके लिए सदैव अजेय है ।

जानकी—(गम्भीर ध्वनि) ऐसी कातर न बनो माँ ! बेटी का सहारा केवल माता है । सकट में उसके मुँह से माँ की ही बात निकलती है । तुमने मुझे वही दिया है जिस पर मेरा अधिकार प्रकृति ने ही दिया था । प्रकृति का अधिकार बुद्धि हटाती है, मन तो उसे मान ही लेता है ।

चित्रांगदा—यही सही । मै फिर आई किस लिए और यह क्या हो गया; मेरी बेटी बनने का अधिकार तुम्हे प्रकृति ने

दिया था। मेरे निकट इस तरह सटकर खड़ी होने पर तुम मेरी कन्या-सी लग भी रही हो। तुम्हारी माता महारानी सुनयना और मुझमे कोई भेद नहीं है, यह भी कह रही हो।

जानकी—यही नहीं माँ, जैसी वे है तुम भी वैसी ही हो। मेरी आँखो मे भेद नही बैठता तो फिर दूसरे तो भ्रम में पडेगे ही।

चित्रांगदा—यह कैसी ध्वनि है? रथ के चक्र की घरघराहट, ऐ ऐ सुनन्दा!

सुनन्दा—उत्तर द्वार से आगे अभी रथ है।

चित्रागदा—फिर भी इस रथ की ध्वनि एक योजन से सुनाई पडती है, इस रथ के चक्को से देव-विजय का नाद निकलता है।

जानकी—हाँ, पंचवटी में यही रथ गया था। इसी रथ ने घने वन और पर्वतो को पार किया था।

चित्रांगदा—विदेह-नन्दिनी, मेरा एक भी मनोरथ पूरा नहीं हुआ। मै आई थी तुम्हारा शृङ्गार करने।

जानकी—वस्त्र और शृङ्गार की यह सामग्री महादेवी अपने हाथो ले आईं?

चित्रांगदा—जिसने तुम्हे इतना दुःख दिया, जो तुम्हारे पति का दारुण वैरी है, उसकी स्त्री मै तुम्हारा शृङ्गार करूँगी और जब तुमने माता कहा, मेरा आग्रह न टालोगी।

जानकी—हाय माँ, शृङ्गार अपने लिए नहीं होता! आर्यपुत्र अपने हाथ मेरे केस सँवारकर फूल लगाते थे। वनवासी पति के पास दूसरे साधन कहाँ थे! शृङ्गार तो अयोध्या में ही छूट गया। वनवासिनी का शृङ्गार! वह भी विरह के दाह मे!

चित्रांगदा—इसलिए कि तुम्हे शोक मे देखकर लंकापति का

अनुराग और न उमड़ पडे। शृङ्गार नारी के रूप को नही, तेज को भी बढ़ाता है। शृङ्गार जीवन का लक्षण है जानकी! तुम्हे आज अपने तेज से लंकेश को जीतना है। तुम्हारे तेज की शिखा मे उनकी आँखे न खुले। यही इस आसन पर बैठ जाओ। मुझे कोई बेटी न हुई, तुम्हारा शृङ्गार करके अपनी साध पूरी कर लूँ।

जानकी—समझकर देवी! रूप का सम्मोहन, रूप का मद और विष घातक भी होता है।

चित्रांगदा—उनके लिए, जो दुर्बल मन के होते है। वे जो मन के विजयी है, रूप के विस्मय मे धरती से ऊपर उठ जाते है।

जानकी—तो नही मानोगी?

चित्रांगदा—अब नही (बैठने की ध्वनि)।

जानकी—तो फिर रहा माँ का आग्रह, पर इन पटु हाथो की सारी कला न लगा देना।

चित्रांगदा—जहाँ ब्रह्मा ने अपनी सारी कला लगा दी है, मै भी अब कसर न रहने दूँगी। समय नही है, फिर भी कला की गति समय और सीमा को पार कर जाती है।

(रथ की घरघराहट और अकस्मात् रुक जाना।)

मन्दोदरी—रथ क्यो रुक गया प्रभु?

रावण—देख रही हो प्रिये! यह रथ यहाँ रुका है।

मन्दोदरी—इसी पर तो देवी चित्रांगदा आई थी, उन्ही का रथ है यह।

रावण—पुलोम पुत्री शची जैसी सुन्दरी और सुकुमारी चित्रांगदा रथ छोड़कर कहाँ पैदल गई? जैसे किसी देवी की पूजा के लिए मन्दिर से दूर रथ छोड दिया हो।

मन्दोदरी—इसी लिए तुमने भी रथ रोक दिया।

रावण—इन्द्र और देवरथियो के सामने इस रथ का प्रताप

है देवी ! विदेह-नन्दिनी जानकी के पास इस रथ पर जाना उसे भय देना होगा। लोक-विजयी मै इसलिए नही हुआ कि एक अबला को भय दूँ।

मन्दोदरी—उसका अनुराग छोड़ दो नाथ ! ससार मे सुन्दरियो की कमी नही है।

रावण—जिस शत्रु ने बहन सूर्पणखाँ के नाक-कान काट लिये, जिसने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया, जो पचवटी में केन्द्र बनाकर मेरे राज्य मे विद्रोह फैला रहा है, उसका क्या उपाय करूँगा। जानकी-हरण मैने नीति के अनुरूप किया। शत्रु की रमणी का अपहरण नीति है और अब जब उसे यहाँ ले आया तो उसके प्रति भी कोई धर्म है या नहीं ? प्रतिहिसा मे उसके नाक-कान काट लेना ही साधारण पुरुप का काम होता, तुम जानती हो रावण असाधारण है।

मन्दोदरी—तीनो लोक जानते है। लंकापति वीर ही नहीं, नीति और मर्यादा के समुद्र है।

रावण—जो कोई नही करता वह मै करना चाहता हूँ। शत्रु-शोधन के लिए मै अपना प्रणय उसकी प्रेयसी को देता हूँ। इसमें वासना नहीं, त्याग है प्रिये !

मन्दोदरी—लेकिन उसके सामने तुम्हारे प्रणय का कोई मूल्य नही है।

रावण—यही विस्मय है। जनक की यह कन्या किस धातु की बनी है ? अशोक के एक वृक्ष की वायु दस दिन मे किसी भी रमणी के भीतर पुरुष की कामना जगा देती है, पुरुप के अंक मे देह को शिथिल कर देने की लालसा नारी के रोम रोम से निकलने लगती है प्रिये ! प्रणय का गहरा रंग अशोक के तने पर तलवे रगड़ने से, उसकी पत्तियो को छूने से और उसके फूल को देखने से रमणी पर छा जाता है।

मन्दोदरी—ओह ! तो फिर तुमने जानकी को अशोक वन में इसलिए रख दिया कि अशोक की वायु, उसके फूल और पत्तो के प्रभाव से उसके भीतर पुरुष की वासना बढ़ेगी ?

रावण—हाँ यह तो मैंने पचवटी से यहाँ तक के रास्ते मे देख लिया था कि इस जानकी पर पुरुष के वे शस्त्र व्यर्थ होगे जो किसी भी युवती को जीत लेते हैं। रूप, बल, विभव और आतंक का प्रभाव पड़ना उस पर सम्भव नही, तब उसे अशोक वन के बीच रख दिया।

मन्दोदरी—और दस महीने निकल गए, उसे एक नही कई सौ अशोक वृक्षो की वायु पीते, अशोक के पत्तो की सेज पर सोते, अशोक के फूलो की गन्ध लेते, फिर भी अभी वह नहीं पिघली। प्रणय की वशी उसके कानो मे न बजी, न उसकी आँखो मे प्रणय का मद चढ़ा और. और न ही उसके अधर और कपोल लाल हुए।

रावण—देखी थी प्रिये, तुमने कभी कोई दूसरी स्त्री, जिस पर अनुराग के सारे साधन इस तरह से व्यर्थ हुए हो; प्रकृति के अमोघ प्रभाव भी जिस पर काम न करें ? देख चुका हूँ मैं, प्रिये, अमरावती की देव-कन्याओ को। पारिजात की एक माला उनके कण्ठ में डालकर कोई भी पुरुष उनका प्रणय पा जाता है।

मन्दोदरी—किन्तु अमरावती में विवाह के बन्धन चलते नहीं, पति और पत्नी वाली बात वहाँ नही है। वहाँ सभी पुरुष और स्त्री है। आँखे लगी.....ललाट पर पसीने की बूँद झलक पड़ी, अधर और कपोल लाल बने, साँस की गति बढी और बस दो एक हो गए। इस जानकी की बात दूसरी है। जिस सस्कार मे, जिस देश, कुल और विधान मे इसका जन्म हुआ इसके लिए पुरुष एक ही है। श्रीरामचन्द्र को छोड़कर इतने बड़े लोक में इसके लिए दूसरा पुरुष पैदा नही हुआ।

रावण—पर उस राम मे कौनसी बात है! वह वीर है, पर वीरो की भी कमी नही। वह रूपवान् है, दूसरे भी उसकी कोटि के पुरुष निकल आएँगे। पिता ने जिसे वन भेजा, कन्द-मूल जिसका भोजन है और भूमि जिसकी सेज है, उसमे इस जानकी के प्राण कैसे बँधे है, किस सुख और विलास की सम्भावना मे इस त्रिलोक-सुन्दरी का मन उसमे ऐसा उलझा है जो छूटता ही नही।

मन्दोदरी—तुम पुरुष हो, ज्ञान और विज्ञान को तुम जानते हो, उसमे नारी के वे रहस्य नही खुले। और तुम एक ओर नीति और देवजयी यश को लिये हो, दूसरी ओर इस तपस्विनी के अनुराग को। दो नाव पर एक साथ नही चढ़ते।

रावण—तो क्या मै आज उसे इस रथ पर वैसे ही बैठा लूँ जैसे पंचवटी में बैठाया था और फिर

मन्दोदरी—कहो भी, रुक कैसे गए

रावण—और फिर रथ से उतारकर अपने भवन में. नही प्रिये, यह अनीति होगी। रावण उस नारी को ग्रहण कभी नही करेगा जिसकी आँखें उसका स्वागत न करें, जिसके कपोल उसे देखकर टहटहे लाल न हो जायँ, जिसकी हर साँस मे अनुराग की रागिनी न हो।

मन्दोदरी—पर तुम उसके निकट कभी अकेले गये भी तो नहीं ?

रावण—इन्द्र के वज्र को मैने रोक लिया। यम के दण्ड, वरुण के पाश, आराध्य शंकर के त्रिशूल की ओर मै निर्भय देख लेता हूँ, पर जनक की इस कन्या की ओर देखना भी मेरे लिए सम्भव नही। उसके निकट अकेले चला जाना, एकान्त में उसके रूप का दर्शन कह रही हो प्रिये! पलक नही गिरेगी और विवेक उड़ जायगा। मै अपने को रोक सकूँगा? यही कहने के

लिए कि लोकजयी लंकापति अन्त मे एक अबला से हार गया।

मन्दोदरी—तब फिर इस तर्क से लाभ ? तुम उसे लौटा दो। इन्द्रजीत या प्रलम्ब से कहो, उसे राम को दे आए।

रावण—मै उसे यहाँ ले आया, अपने से लौटाऊँ तो फिर ससार क्या कहेगा ? शत्रु की स्त्री का मैने हरण किया था तो वह अब मेरी होगी। यदि राम मे बल होगा तो मुझे हराकर उसे ले जायगा। निराशा मेरे लिए नही है प्रिये ! चलने दो यह द्वन्द्व। विश्वजयी रावण एक ओर और यह जानकी, मोहिनी जानकी दूसरी ओर। ससार का सबसे प्रतापी पुरुष और ससार की सबसे सुन्दरी रमणी।

मन्दोदरी—राम को पता चलेगा तब

रावण—इन्द्र की चिन्ता जिसे नही हुई वह इस वनवासी राम की चिन्ता करेगा, प्रिये ! वीर रमणी हो तुम, यह निर्बलता तुम्हे शोभा नहीं देती।

मन्दोदरी—इस अग्नि-शिखा जानकी को लौटा दो नाथ, नही तो फिर लंका जलेगी।

रावण—उस दिन जब प्रलय होगी, शकर का ताण्डव इस सृष्टि का नाश करेगा, महादेव के शृङ्गीनाद में उनका यह भक्त भी नाचेगा प्रिये ! जो शकर के बल से बली है वह राम की चिन्ता कैसे करे ?

मन्दोदरी—राम का बल अभी तुमने नहीं देखा। खरदूषण का जिसने वध किया, बालि जिसके बाण से मरा, फिर भी जिस दिन मै तुमसे बलवान किसी दूसरे पुरुष को मानूँगी उस दिन धरती मे समा जाऊँगी। राम का बल राम मे न देखकर जनक की पुत्री जानकी मे देखो। दस महीने अशोक वन में रहकर भी जिसके मन में किसी दूसरे पुरुष की, यहाँ तक कि

तुम्हारी कामना भी जिनके मन में न हुई यह किस बात की सूचना है ?

रावण—किस बात की प्रिये ?

मन्दोदरी—जिस पुरुष को तुम उसकी स्त्री के मन से पराजित न कर सके, उसे तुम रण में पराजित न कर पाओगे।

रावण—यही तो चाह थी कि पहले उसे उसकी प्रेयसी के मन से पराजित करूँ। फिर भी चिन्ता नही, अपराजित रावण पराजित न होगा।

मन्दोदरी—तो क्या तुम उसे इस अशोक वन से न निकालोगे ? उसे यही रहने दोगे ?

रावण—जिससे उसके रोम-रोम से, उसकी हर सांस से, प्रेम का, प्रणय का, अनुराग का संगीत निकले।

मन्दोदरी—इतने निठुर न बनो, नाथ !

रावण—निठुर ? शत्रु की रमणी को इतना मान कब किसने दिया होगा, प्रिये ? पर अब चले, देवी चित्रांगदा राह देखती होगी। देखूँ आज भी उसने शृङ्गार करने दिया या नही। यदि मै निठुर हो पाता, नीति और मर्यादा से डग-भर भी डिगता तो अब तक यह जानकी कब की मेरे अंक मे आ चुकी होती। हाँ, क्या कहती हो ? कहूँ मै उससे, आज से अब राम को भूलकर मेरा प्रणय ले, जिसे देव-कन्याएं भी लेना चाहेगी।

मन्दोदरी—और यदि वह कुछ न बोले ?

रावण—मेरी दोनो रानियाँ उसका मौन भी न तोड़ सकेंगी।

मन्दोदरी—और कहीं तुम उसे भय दो ?

रावण—भय मे प्रेम नही लिया जाता। मै उससे पूछूँ, राम मे मुझसे अधिक गुण क्या है ? देखे क्या कहती है ? चलो रथ यही छोड़कर चलें। देखें चित्रांगदा क्या कर रही है ?

(दोनो के चलने की ध्वनि।)

मन्दोदरी—देख रहे हो, चित्रागदा उसकी वेणी मे अशोक के फूल लगा रही है।

रावण—देख रहा हूँ। उर्वशी, रम्भा, मेनका की वेणी मै देख चुका हूँ। कही भी विष की यह लहर नहीं देखी।

मन्दोदरी—उसका मुख देखकर मूर्छित तो न हो जाओगे?

रावण—इसीलिए तो दो रानियो के साथ चला हूँ। यही भय था। अपवाद और आघात दोनो से बचा रहूँ।

मन्दोदरी—देवी चित्रांगदा से भी सुन्दरी है यह जानकी? देख रहे हो उसके शृङ्गार मे सगीत से भी काम ले रही है।

रावण—फिर भी तुम निठुर कह रही हो। तुमने मुझे इन्द्रजीत जैसा रत्न दिया, किन्तु प्रणय की भूख तो चित्रांगदा से ही मिटी। मेरी वही प्रियतमा इस अभिमानिनी के शृङ्गार मे स्वर और लय का जाल बुन रही है। अपना शृङ्गार भी इस लगन से जिसने कभी नही किया होगा।

मन्दोदरी—हाँ जी, जैसे सोने की मूर्तियाँ एक-दूसरे के सहारे खड़ी हों।

रावण—जानकी जितना ही अधिक मेरा निवारण करती है, मै उसकी ओर खिचा जाता हूँ। कामना का अवरोध असह्य होता है। सुनन्दा ने देख लिया।

सुनन्दा—महाराज और महारानी की जय!

चित्रांगदा—अरे, तो प्रभु आ गए? पैदल

रावण—मैंने देखा कि महारानी चित्रांगदा पैदल ही गई है। पुरुष कठोर होकर सूख जाता यदि रमणी का शील उसे सरल न बनाता।

मन्दोदरी—विदेह-नन्दिनी, यहाँ तुम्हे कोई कष्ट तो नहीं है?

जानकी—महारानी मन्दोदरी के समीप किसी नारी को कष्ट

हो तो फिर महारानी का यश क्या रहेगा ?

रावण—कृतज्ञ हूँ चित्रांगदा ! तुम्हारी कला धन्य है।

चित्रांगदा—मेरी नही प्रियतम, ब्रह्मा की कला के कृतज्ञ बनो, जिसने इस एक रचना मे अपनी सारी कला लगा दी।

रावण—जानकी देवी, चित्रांगदा ने तुम्हारा अपने हाथो शृङ्गार किया। यह अवसर तुम्हे पचवटी मे न मिलता।

जानकी—माता अपनी पुत्री का शृङ्गार करती है, यह कोई नई बात नही है।

रावण—क्या क्या

चित्रांगदा—बेटी जानकी का शृङ्गार मैने किया देव ! इसका इस तरह से सूखते रहना हमारे लिए, इस सोने की लंका के लिए, अभिशाप होता।

रावण—तो जानकी को बेटी बनाने आई हो यहाँ देवी ?

मन्दोदरी—देवी चित्रांगदा को भय हुआ कि इस सौत से उनकी ओर महाराजा की रुचि न रहेगी।

चित्रांगदा—झूठ है महारानी ! यह चित्रांगदा प्रियतम के लिए प्राण निकाल देगी।

रावण—तो फिर देवी यह विश्वासघात ?

जानकी—कभी नही। वासना से पति को बचा लेना भी पातिव्रत है। अपना शरीर, अपना हृदय, मन की सारी कामनाओं को जिसने सौप दिया, विश्वासघात वह क्या जानेगी लंकापति ! इन्हे देखकर मुझे माता सुनयना की याद आती रही है। बार-बार मैने इन्हें माँ कहा। इस बात को ये रोकती भी रही, किन्तु प्रकृति का अधिकार कब तक रुकता है !

रावण—प्रकृति का अधिकार..

जानकी—मेरी अवस्था इनकी पुत्री जैसी नही है ? चालीस और अठारह। माता और पुत्री का अनुपात क्या यही नहीं है,

इसे प्रकृति का अधिकार नही कहेंगे ? महारानी मन्दोदरी !

मन्दोदरी—जानकी, देवजयी लकापति के लिए देव, यक्ष, किन्नर और नाग-कन्याएँ सदैव कामना करती रहीं। इनकी कामना कभी किसी नारी की ओर नही हुई। जिसने इनकी शरण चाही, जिसके मन में इनका अनुराग जागा उसे इनकी शरण मिली, इनका प्रेम मिला, इनका विभव मिला।

रावण—रुको देवी ! चित्रांगदा तुम्हारी माता की अवस्था की है, जानकी ! किन्तु मै ? जान लो पुरुष की आयु नही, उसका रूप और तेज देखा जाता है।

जानकी—तो इसका अर्थ यह कि राक्षसराज मुझसे अपना प्रणय निवेदन करते है। आत्म-समर्पण नारी करती है, राक्षस-राज ! पुरुप नहीं; और पुरुप जब यह करता है फिर पुरुष नही रह जाता। देवजयी रावण किसी नारी से प्रणय का प्रस्ताव करे तब पौरुप धूल मे लोटेगा और वीरता विडम्बना होगी।

चित्रांगदा—बेटी !

रावण—विदेह-पुत्री, रावण के अपमान की शक्ति इन्द्र और यम मे नहीं है। अपमान करने वाले के कण्ठ पर मेरा यह चन्द्रहास

जानकी—यह कण्ठ झुका है। मै रावण के इस चन्द्रहास का स्वागत अपने कण्ठ पर करती हूँ, जिसके आतक से तीनो लोक कॉपते है। अपमान नही करती मै। स्वार्थ की ठेस अपमान-सी लगती ही है, इसमे मेरा अपराध नही।

चित्रागदा—क्रोध नही प्रभु ! विश्व-विजयी नारी पर क्रोध करेंगे तो फिर इसके नाक-कान काटकर वही पचवटी मे फेंक देते। इतने शील, सयम और इतने धैर्य की

रावण—नीति और मर्यादा के विचार से आज यह सुनना

पड़ा नहीं तो फिर इसे अशोक वन मे न रखकर अपने अन्तः-पुर में रखता।

जानकी—महात्मा रावण की इससे कीर्ति बढ़ी। इस अशोक वन मे जानकी जीवित है, अन्त पुर मे उसका शव रहता।

रावण—उस वनवासी रामचन्द्र मे क्या है ऐसा? रूप, गुण, विक्रम, धन और विभव किस बात में वह मेरी समता करेगा?

जानकी—इसका उत्तर महारानी मन्दोदरी दे; माता चित्रांगदा भी दे सकेगी। लंकापति से अधिक सुन्दर और बली कोई दूसरा पुरुप इन देवियो ने देखा है?

रावण—कही कोई हो भी तो

जानकी—होगा भी तो नही दिखाई देगा। पति के रूप से बढ़कर कोई भी दूसरा रूप नारी की आँखों मे आता ही नहीं। महारानी मन्दोदरी और माता चित्रांगदा की आँखो मे राक्षस-राज सबसे सुन्दर और सबसे मोहक पुरुप है। इन्द्रजयी मेघनाद की स्त्री उनसे रूपवान् दूसरा पुरुप न देखती होगी।

रावण—हूँ तो फिर राम से अधिक रूपवान् पुरुप तुम्हारे लिए कोई दूसरा नहीं है?

जानकी—राक्षसराज किसी भी बात मे आर्यपुत्र से घटकर है, यह अपने मुँह से न कहूँगी। शील और मर्यादा का यही आग्रह है। दो पुरुपो की समता की बात न कहकर उनका जो भेद है

रावण—और क्या है वह? इधर देखो, बस एक बार मेरी ओर देखकर कहो।

जानकी— यह लाभ मै लंकापति को; न दूँगी। प्रतापी रावण के प्रणय और प्रेम की सीमा नही है। वह एक ही साथ कितनी रमणियो से मिलेगा? आर्यपुत्र ने केवल इसी एक अभागिनी

को अपना प्रणय दिया था। बस इस एक ही दान मे उनके पास फिर कुछ न बचा।

रावण—(गम्भीर ध्वनि) क्या एक पुरुष की एक ही स्त्री?

जानकी—आर्यपुत्र की आँखो मे एक ही नारी चढ़ी। उनके अधरो को एक ही नारी के अधर मिले। उनकी बाँहे एक ही नारी के गले मे पड़ी। राक्षसराज के बल का, प्रताप का और प्रेम का अन्त नहीं है। आर्यपुत्र के प्रेम का अन्त तो जान चुकी हूँ, बल और प्रताप की बात मै जानती नही।

रावण—विस्मय है!

जानकी—यह अशोक वन इस विस्मय को कभी मिटने न देगा राक्षसराज!

रीढ़ की हड्डी

श्री जगदीशचन्द्र माथुर

पात्र

उमा—लड़की

रामस्वरूप—लड़की का पिता

प्रेमा—लड़की की माँ

शंकर—लड़का

गोपालप्रसाद—लड़के का बाप

रतन—नौकर

रीढ़ की हड्डी

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है, वह अधेड़ उम्र के मालूम होते है। एक तख्त को पकडे हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे मे आते है। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।]

बाबू—अबे धीरे धीरे चल। अब तख्त को उधर मोड़ दे उधर। बस, बस।

नौकर—बिछा दूं साहब ?

बाबू—(जरा तेज आवाज मे) और क्या करेगा ? परमात्मा के यहां अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुंचा था ? बिछा दूं साहब ! और यह पसीना किस लिए बहाया है ?

नौकर—(तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू—हँसता है ! अबे, हमने भी जवानी मे कसरते की है। कलसों से नहाता था लोटो की तरह। यह तख्त क्या चीज है ? उसे सीधा कर यो हाँ, बस। और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए। चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही।

(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच मेजपोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ करते है। कुर्सियो पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती है। गदुमी रग, छोटा कद। चेहरे और आवाज से जाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त

है। उसके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ। बाबू साहब रामस्वरूप दोनो की तरफ देखते है ।]

प्रेमा—मै कहती हूँ तुम्हे इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड गई ? एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी मे

रामस्वरूप—धोती !

प्रेमा—हाँ, अभी तो बदलकर आये हो, और फिर न जाने किस लिए

राम०—लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा—यही तो कह रहा था रतन।

राम०—क्यो बे रतन, तेरे कानो मे डाट लगी है क्या ? मैने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ ! उल्लू कही का।

प्रेमा—अच्छा, जा, पूजा वाली कोठरी मे लकड़ी के बक्स में ऊपर धुले हुए कपड़े रखे है न ? उन्ही मे से एक चद्दर उठा ला।

रतन—और दरी ?

प्रेमा—दरी यही तो रखी है, कोने में। वह पडी तो है।

राम०—(दरी उठाते हुए) और बीबीजी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी जल्दी जा।

(रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते है।)

प्रेमा—लेकिन वह तुम्हारी लाडली बेटी तो मुँह फुलाए पड़ी है।

राम०—मुँह फुलाए ! और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो लोग पकड़ मे आए है, अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना।

प्रेमा—तो मै ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गई। तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रखा है। मेरी

समझ मे तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नही। अपना जमाना अच्छा था। 'आ ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ लो, सच पूछो तो स्त्री-सुबोधिनी मे ऐसी-ऐसी बाते लिखी है—ऐसी बाते कि क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे है—

राम०—ग्रामोफोन बाजा होता है न?

प्रेमा—क्यो!

राम०—दो तरह का होता है—एक तो आदमी का बनाया हुआ, उसे एक बार चलाकर जब चाहे रोक लो और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ, उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नही।

प्रेमा—हटो भी। ठठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नही कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगो के आने मे!

राम०—तो हुआ क्या?

प्रेमा—तुम्ही ने तो कहा था कि जरा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लडकी कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीम-टाम के भला कौन पूछता है? इसी मारे मैने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था, पर उसे तो इन चीजो से न जाने किस जनम की नफरत है। मेरा कहना था कि आँचल मे मुँह लपेटकर लेट गई। भई मै तो बाज आई तुम्हारी इस लडकी से।

राम०—न जाने कैसा इसका दिमाग है, वरना आजकल की लड़कियो के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है।

प्रेमा—अरे मैने तो पहले ही कहा था। एंट्रेंस ही पास करा देते—लड़की अपने हाथ रहती और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती, पर तुम तो—

राम०—(बात काटकर) चुप, चुप । (दरवाजे मे झाँकते हुए) तुम्हे कतई अपनी जबान पर काबू नही है । कल ही यह बता दिया था कि उन लोगो के सामने ज़िक्र और ढङ्ग से होगा मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो । उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी ।

प्रेमा—अच्छा बाबा, मै न बोलूँगी । जैसी तुम्हारी मरजी हो, करना । बस मुझे तो मेरा काम बता दो ।

राम०—तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो । न सही पौडर । वैसे कौन बुरी है ! पान लेकर भेज देना उसे । और नाश्ता तो तैयार है न ! (रतन का आना) आ गया रतन । इधर ला, इधर । बाजा नीचे रख दे । चद्दर खोल । पकड़ा तो जरा उधर से ।

(चद्दर बिछाते है ।)

प्रेमा—नाश्ता तो तैयार है । मिठाई तो वे लोग ज्यादा खाएँगे नहीं । कुछ नमकीन चीजे बना दी है । फल रखे है ही । चाय तैयार है और टोस्ट भी । मगर हाँ, मक्खन ? मक्खन तो आया ही नहीं ।

राम०—क्या कहा ! मक्खन नहीं आया । तुम्हे भी किस वक्त याद आई है ! जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हे तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं । अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे । दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरो के मारे...

प्रेमा—यहाँ का काम कौन ज्यादा है ? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही । बाजा-सितार आ ही गया । नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे मे ट्रे रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी । एकाध चीज खुद ले आना । इतनी देर मे रतन मक्खन ले ही आयेगा । दो आदमी ही तो है ।

राम०—हाँ, एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो उमा से कह देना कि ज़रा करीने से आये। ये लोग ज़रा ऐसे ही है। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालो पर। खुद पढ़े-लिखे है, वकील है, सभा-सोसाइटियो मे जाते है, मगर लडकी चाहते है ऐसी कि ज्यादा पढी-लिखी न हो।

प्रेमा—और लड़का ?

राम०—बताया तो था तुम्हे। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ मे ही तो पढ़ता है मेडिकल कालेज मे। कहता है कि शादी का दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ, मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लडको और इनके बापो को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी .

रतन—(जो अब तक दरवाजे के पास चुपचाप खडा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबूजी, बाबूजी !

राम०—क्या है ?

रतन—कोई आते है।

राम०—(दरवाजे से बाहर झाँककर जल्दी मुँह अन्दर करते हुए) अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गए। (नौकर पर नजर पडते ही) अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ। गया नहीं मक्खन लाने ? सब चौपट कर दिया। अब उधर से नहीं, अन्दर के दरवाजे से जा (नौकर अन्दर आता है।) और तुम जल्दी करो प्रेमा ! उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती जमीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है।)

प्रेमा—उँह, यह बाजा नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

राम०—तुम जाओ, मै रखे देता हूँ। जल्दी।

(प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते है। किवाड़ो पर दस्तक।)

राम०—हॅ-हॅ-हॅ। आइए, आइए। हॅ-हॅ-हॅ।

(बाबू गोपालप्रसाद और उनके लडके शकर का आना। आँखो से लोक चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फितरती महाशय है। उनका लडका कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानो मे से है। आवाज पतली है और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

राम०—(अपने दोनों हाथ मलते हुए) हॅ-हॅ, इधर तशरीफ लाइए इधर

(बाबू गोपालप्रसाद बैठते है, मगर बेंत गिर पड़ता है।)

राम०—यह बेत! लाइए मुझे दीजिए। (कोने मे रख देते हैं। सब बैठते है।) हॅ-हॅ मकान ढूढ़ने में कुछ तकलीफ तो नही हुई ?

गोपाल०—(खखारकर) नही। तॉगे वाला जानता था। और फिर हमे तो यहॉ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नही ?

राम०—हॅ-हॅ-हॅ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैने आपको तकलीफ तो दी—

गोपाल०—अरे नहीं साहब, जैसा मेरा काम वैसा ही आपका काम। आखिर लडके की शादी तो करनी ही है, बल्कि यो कहिए कि मैने आपके लिए खासी परेशानी कर दी।

राम०—हॅ-हॅ-हॅ। यह लीजिए, आप तो मुझे कॉटो मे घसीटने लगे। हम तो आपके—हॅ-हॅ—सेवक ही हैं—हॅ-हॅ! (थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिन की छुट्टियॉ है ?

शंकर—जी, कालिज की तो छुट्टियॉ नही है। 'वीक एण्ड' मे चला आया था।

राम०—तो आपके कोर्स खत्म होने मे तो अब साल-भर रहा होगा ?

शंकर—जी, यही कोई साल-दो साल।

राम०—साल-दो साल ?

शकर—हॅ-हॅ-हॅ   जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूॅ

गोपाल०—बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बताये, इन लोगो को इसी उम्र मे सारी बीमारियॉ सताती है। एक हमारा जमाना था कि स्कूल से आकर दर्जनो कचौड़ियॉ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख।

राम०—कचौडियॉ भी तो उस जमाने मे पैसे की दो आती थी।

गोपाल०—जनाब, यह हाल था कि चार पैसे मे ढेर-सी बालाई आती थी और अकेले दो आने की हजम करते की ताकत थी, और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते है स्कूल मे। तब न कोई वॉलीबाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हॉकी या क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे, मगर मजाल कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

(शकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते है।)

राम०—जी हॉ, जी हॉ, उस जमाने की बात ही दूसरी थी हॅ-हॅ।

गोपाल०—(जोशीली आवाज मे) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घण्टे की 'सिटिंग' हो गई, बारह घण्टे। जनाब, मै सच कहता हूॅ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबला नही कर सकते।

राम०—जी हाँ, जी हाँ, यह तो है ही।

गोपाल०—माफ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस जमाने की जब याद आती है, अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है।

राम०—हँ-हँ-हँ जी हाँ वह तो रगीन जमाना था, रगीन जमाना। हँ-हँ-हँ।

(शकर भी हीं-ही करता है।)

गोपाल०—(एक साथ ही अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब, फिर, 'बिजनेस' की बातचीत हो जाय।

राम०—(चौककर) बिजनेस !—बिज (समझकर) ओह अच्छा, अच्छा, लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिए।

(उठते है।)

गोपाल०—यह सब आप क्या तकल्लुफ करते है ?

राम०—हँ हँ हँ। तकल्लुफ किस बात का ? हँ हँ ! यह तो मेरी बडी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये, वरना मै किस काबिल हूँ। हँ हँ माफ कीजिएगा जरा, अभी हाजिर हुआ।

(अन्दर जाते है।)

गोपाल०—(थोड़ी देर बाद दबी आवाज मे) आदमी तो भला है, मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नही मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर—जी

(कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है।)

गोपाल०—क्यो, क्या हुआ ?

शंकर—कुछ नही।

गोपाल०—झुककर क्यो बैठते हो ? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो। तुम्हारे दोस्त ठीक कहते है कि शंकर की 'बेकबोन'

गोपालप्रसाद की तरफ बढाते हैं।) लीजिए।

गोपाल०—(समोसा उठाते हुए) कभी नही साहब, कभी नही।

राम०—(शकर की तरफ मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है शंकर बाबू ?

शंकर—किस मामले मे ?

राम०—यही कि शादी तय करने मे खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपाल०—(बीच मे ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम-आप मान भी जायॅ, मगर घर की औरतें तो राजी नही होर्ती। आपकी लड़की तो ठीक है ?

राम०—जी हॉ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपाल०—देखना क्या ? जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

राम०—हॅ-हॅ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी एहसान है। हॅ-हॅ !

गोपाल०—और जायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा ?

राम०—जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है ? ठाकुर जी के चरणो मे रख दिया, बस खुद-ब-खुद मिला हुआ समझिए।

गोपाल—यह ठीक कहा आपने, बिलकुल ठीक। (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हॉ, यह जो मेरे कानो मे भनक पड़ी है, यह तो गलत है न ?

राम०—(चौककर) क्या ?

गोपाल०—यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में। जी हॉ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नही, कौन भुगतेगा उनके नखरो को। बस हद-से-हद मैट्रिक पास होनी चाहिए क्यो शंकर ?

शकर—जी हॉ, कोई नौकरी तो करानी नही।

राम०—नौकरी का तो कोई सवाल ही नही उठता।

गोपाल—और क्या साहब, देखिए कुछ लोग मुझसे कहते है कि जब आपने अपने लड़को को बी० ए०, एम० ए० तक पढाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए, इन अक्ल के ठेकेदारो से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लडकियो की पढाई एक बात है। अरे मर्दो का काम तो है ही पढना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगी, अंग्रेजी अखबार पढने लगी और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगी तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते है, मोरनी के नहीं; शेर के बाल होते है, शेरनी के नहीं।

राम०—जी हॉ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नही। .हँ....हँ हँ !

(शकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं।)

गोपाल०—हां, हॉ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी है जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी चीजो मे से एक है।

राम०—(शंकर से) चाय और लीजिए।

शंकर—धन्यवाद, पी चुका।

राम०—(गोपालप्रसाद से) आप ?

गोपाल०—बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए।

राम०—आपने तो कुछ खाया ही नही। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बताएँ, वह मक्खन—

गोपाल०—नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नही। और फिर टोस्ट-वोस्ट मै खाता भी नही।

राम०—हॅं हॅं। (मेज को एक तरफ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँह करके जरा जोर से) अरे, जरा पान भिजवा देना ! सिगरेट मॅंगवाऊँ ?

गोपाल०—जी नही।

(पान की तश्तरी हाथो मे लिये उमा आती है। सादगी के कपडे, गरदन झुकी हुई। बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ाकर और शकर आँखें छिपाकर उसे तक रहे हैं।)

राम०—हॅं हॅं ! यही, हॅं हॅं, आपकी लड़की है। लाओ बेटी, पान मुझे दो।

(उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम-वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौक उठते हैं।)

गोपालप्रसाद
और शकर } —(एक साथ)—चश्मा !!

राम०—(जरा सकपकाकर) जी, वह तो वह.....पिछले महीने इसकी आँखें दुखनी आ गई थी, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपाल०—पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नही है कुछ ?

राम०—नहीं साहब, वह तो मैने अर्ज किया न।

गोपाल०—हूँ। (सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर मे) बैठो बेटी !

राम—वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे-बाजे के पास।

(उमा बैठती है।)

गोपाल०—चाल मे तो कुछ खराबी है नही। चेहरे पर भी छवि है। हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है ?

राम०—जी हाँ, सितार भी और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से जाहिर है, कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है और उसकी आँखें शङ्कर की झेंपती-सी आँखो से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।)

राम०—क्यो, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा !

गोपाल०—नही-नही साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

(उमा सितार रखकर अन्दर जाने को उठती है।

गोपाल०—अभी ठहरो, बेटी !

राम०—थोड़ा और बैठी रहो, उमा ! (उमा बैठती है।)

गोपाल०—(उमा से) तो तुमने पेंटिग-वेंटिग भी सीखी है ?

उमा—(चुप)

राम०—हाँ, वह तो मै आपको बताना भूल ही गया। यह जो तस्वीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है; और वह उस दीवार पर भी।

गोपाल०—हूँ ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

राम०—सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीजें भी। हँ . हँ हँ।

गोपाल०—ठीक। लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते है ?

(उमा चुप है। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा

चुप है उसी तरह गरदन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।)

राम०—जवाब दो, उमा ! (गोपाल० से) हॅ-हॅ, जरा शरमाती है, इनाम तो इसने ....

गोपाल०—(जरा रूखी आवाज में) जरा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

राम०—उमा, देखो, आप क्या कह रहे है ? जवाब दो न।

उमा—(हल्की लेकिन मजबूत आवाज मे) क्या जवाब दूँ बाबूजी ? जब कुर्सी-मेज बिकती है तब दुकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नही पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसन्द आ गई तो अच्छा है, वरना

राम०—(चौककर खड़े हो जाते है) उमा, उमा !

उमा—अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी ! ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आये है, इनसे पूछिए कि क्या लडकियो के दिल नही होता ? क्या उनके चोट नही लगती ? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ है, जिन्हे कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते है ?

गोपाल०—(ताव मे आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्ज़त उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था ?

उमा—(तेज आवाज में) जी हाँ, और हमारी बेइज्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं ? और ज़रा अपने इन साहबजादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यो घूम रहे थे और वहाँ से कैसे भगाये गये थे।

शंकर—बाबूजी, चलिए।

गोपाल०—लड़कियो के होस्टल में ?. ..क्या तुम कालेज में पढ़ी हो ?

(रामस्वरूप चुप ।)

उमा—जी हाँ, मै कालेज मे पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नही किया, कोई चोरी नही की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँककर कायरता दिखाई । मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरो पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

राम०—उमा, उमा ! !

गोपाल०—(खडे होकर गुस्से मे) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा की । आपकी लड़की बी० ए० पास है और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए मेरी छडी कहाँ है ? मै चलता हूँ। (छड़ी ढूँढकर उठाते है।) बी० ए० पास ! उफ्फोह ! गजब हो जाता ! झूठ का भी कुछ ठिकाना है ! आओ बेटे, चलो

(दरवाजे की ओर बढते हैं।)

उमा—जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं—यानी बैकबोन, बैकबोन—

(बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लडके के रुलासापन । दोनो बाहर चले जाते है। बाबू रामस्बरूप कुर्सी पर धमसे बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है, लेकिन उसकी हँसी सिसकियों मे तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत मे आना।)

प्रेमा—उमा, उमा .रो रही है ?

(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।)

रतन—बाबूजी, मक्खन।

(सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।)

अशोक

(कलिंग-विजय के बाद की एक रात)

श्री विष्णु प्रभाकर

पात्र

अशोक—भारत-सम्राट्
राधागुप्त—अशोक का महामात्य
महेन्द्र—अशोक का छोटा भाई
संघमित्रा—अशोक की छोटी बहिन
कुमार—कलिंग का युवराज
उपगुप्त—बौद्ध भिक्षु

अशोक

[स्थान—कलिग की युद्ध-भूमि मे दूर-दूर तक फैले शिविर और उन पर छाई धूमिल सन्ध्या। स्थान-स्थान पर सैनिक पहरा दे रहे हैं। स्टेज पर सम्राट् अशोक के शिविर का आन्तरिक दृश्य। इस समय सम्राट् अशोक प्रकोष्ठ मे इधर-उधर घूम रहे है। पृष्ठभूमि मे सान्ध्य-गीत की ध्वनि उठती है। सम्राट् की मुख-छवि अत्यन्त गम्भीर है, गति मे उग्रता है। वे अकेले हैं और रह-रहकर शिविर-द्वार की ओर देख लेते हैं, तभी शीघ्रता से महामात्य राधागुप्त वहाँ प्रवेश करते हैं।]

राधागुप्त—सम्राट् की जय हो! राजकुमार बन्दी हो चुके है।

अशोक—(चौककर) कलिग के राजकुमार बन्दी हो चुके है? सच कहते हो महामात्य?

राधा०—आज्ञा हो तो राजकुमार को सम्राट् के चरणो मे उपस्थित किया जाय?

अशोक—(अनमना-सा) ..अभी ठहरो। पहले मुझे यह बताओ कि क्या अब युद्ध की आवश्यकता नही रही?

राधा०—हाँ देव, कलिग-विजय पूर्ण हुई।

अशोक—(उसी तरह) कलिग-विजय पूर्ण हुई। अब शस्त्रो की झंकार सुनने को नही मिलेगी; अब आहतो की चीत्कार बन्द हो जायगी।

राधा०—देव! अब कलिग में कौन बचा है जो शस्त्रो की झंकार सुनेगा! जो वृद्ध, वनिताएँ या बालक वहाँ शेष है, वे न सुन सकते है, न बोल सकते है। वे केवल अपलक दृष्टि से

शून्य में ताकते रहते है। उनसे बाते करो तो कुछ इस प्रकार देखते है कि बोलने वाला स्वयं पानी-पानी हो जाता है। हॉ वहॉ केवल एक व्यक्ति है जो देखता भी है और बोलता भी।

अशोक—वह क्या बोलता है?

राधा०—यह तो मै नही बता सकूँगा, देव!

अशोक—(सहसा तेज होकर) महामात्य, जानते हो तुम किससे बात कर रहे हो?

राधा०—जानता हूँ, भारत-सम्राट्!

अशोक—तब?

राधा०—सम्राट् चाहे तो वह बात स्वयं उसी के मुँह से सुन सकते है।

अशोक—तो तुम उस वाचाल को पकड लाए हो?

राधा०—मैने अभी निवेदन किया था, देव! कलिंग-कुमार बन्दी हो चुके है।

अशोक—कलिंग-कुमार, कुमार बन्दी होकर भी बोलना जानते है।

राधा०—तब से तो वे कुछ अधिक बोलने लगे है, सम्राट्!

अशोक—(ओठ चबाकर) वे शायद भारत-सम्राट् चडाशोक के स्वभाव को नही जानते।

राधा०—देव! कुमार मगध में हमारे अतिथि रहे है। आखेट के समय उनके हस्त-लाघव की सम्राट् ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और देवी संघमित्रा

अशोक—(जोर से) महामात्य!

राधा०—अपराध क्षमा हो देव! देवी सघमित्रा आज भी कुमार की प्रशंसक है। वह कहती थी, कुमार के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक वीर पुरुष के साथ होता है।

अशोक—महामात्य, हमें देवी संघमित्रा के परामर्श की

आवश्यकता नहीं है। हम जानते हैं, हमे कब क्या करना होगा। तुम बन्दी को उपस्थित करो। हम उसकी बातें सुनेंगे।

राधा०—जो आज्ञा देव!

(राधागुप्त का गमन, संघमित्रा का प्रवेश।)

संघमित्रा—भइया!

अशोक—कौन सघमित्रा! तुम इस समय यहाँ क्यो आई?

सघमित्रा—सम्राट् से निवेदन करने कि गायिका आ गई है। आज्ञा हो तो उपस्थित करूँ?

अशोक—इस समय नही, सघमित्रा! मुझे कुछ आवश्यक काम है।

संघमित्रा—क्या मै जान सकती हूँ, सम्राट् को इस सन्ध्या-काल मे क्या काम है?

अशोक—तुम काम जानना चाहती हो—तुम काम जानना चाहती हो। (एकदम) नही संघमित्रा, मै तुम्हे कुछ नही बता सकूँगा।

सघमित्रा—(हँसकर) बताने की कोई आवश्यकता नही सम्राट्! मै जानती हूँ, आप कलिंग-कुमार के भाग्य का निर्णय करने जा रहे है। मै आपसे केवल इतना निवेदन करूँगी कि आज आपके शौर्य की परीक्षा है।

अशोक—भारत-सम्राट् चंडाशोक का शौर्य विश्व-विदित है। कुमार को मेरे चरणो मे सिर झुकाना ही होगा।

सघमित्रा—और न झुकाया तो!

अशोक—तो यह तलवार उसे झुका लेगी!

(तलवार को म्यान में बजाता है।)

संघमित्रा—(काँपकर) भइया!

अशोक—(हँसकर). काँप गई । क्या तुम्हे शस्त्रो से डर लगने लगा है ?

सघमित्रा—नही, मैं शस्त्रो से नही डरती, सम्राट् !

अशोक—तो कुमार की मृत्यु से डरती हो ?

सघमित्रा—नही सम्राट्, मुझे उसकी चिन्ता नही है ।

अशोक—तो फिर किस बात की चिन्ता है ?

संघमित्रा—मुझे सम्राट् की चिन्ता है । सम्राट् गलती से शौर्य को तलवार मे समझ बैठे है ।

अशोक—तो और वह कहाँ होता है ?

सघमित्रा—हृदय में, सम्राट् ! हृदय की विशालता और उदारता का नाम शौर्य है ।

अशोक—(अनमना-सा) हृदय की विशालता और उदारता . (सहसा अट्टहास) हृदय की विशालता और उदारता । जान पड़ता है कलिंग के उस भिक्षु का प्रभाव तुम पर भी पड़ा है, संघमित्रा ! आखिर तो तुम नारी हो और नारी की अविरोध शक्ति बड़ी दुर्बल होती है । लेकिन याद रखो, अशोक बौद्धो की इस दुर्बल नीति के बल पर भारत का सम्राट् नही बना है ।

संघमित्रा—लेकिन सम्राट्. (किसी के आने का स्वर)

अशोक—(शीघ्रता से) तुम अब जा सकती हो, संघमित्रा !

संघमित्रा—भइया !

अशोक—जाओ संघमित्रा ! भारत-सम्राट् अशोक तुम्हें जाने की आज्ञा देता है ।

संघमित्रा—(जाती हुई) जा रही हूँ, सम्राट् ! पर भूलिए नही, हृदय की विशालता का नाम ही शौर्य है ।

(शब्द दूर जाते हैं । पद-चाप पास आते है । राधागुप्त का कलिग-कुमार के साथ प्रवेश । कुमार को दो सैनिकों ने पकड़ा हुआ है । अन्दर आते ही वे कुछ हटकर खड़े हो जाते हैं ।)

राधा०—सम्राट् की जय हो, कलिंग-कुमार उपस्थित है।

अशोक—(कठोर स्वर में) महामात्य, कलिंग का अब कोई कुमार नहीं है। यह एक साधारण बन्दी है।

कुमार—अशोक, अपनी वास्तविक अवस्था में सभी साधारण होते है। तुम भी अशोक पहले हो, सम्राट् पीछे।

अशोक—(कड़ककर) बन्दी, जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो ?

कुमार—जानता क्यों नहीं ? मैं मगध के हत्यारे सम्राट् चंडाशोक से बातें कर रहा हूँ—उस चंडाशोक से जिसने माँ वसुन्धरा को अपने लाखों पुत्रों का रक्त पीने को विवश किया है।

अशोक—(क्रुद्ध) बन्दी, तुम वाचाल ही नहीं, धृष्ट भी हो। इस धृष्टता का एक ही प्रतिकार मेरे पास है और वह है यह कटार। (कटार दिखाता है)

कुमार—हत्यारे के पास कटार के अतिरिक्त भी और कुछ होता है क्या ?

अशोक—बन्दी, मैं अभी तुम्हारा सिर काट सकता हूँ।

कुमार—जो धरती माता अपने लाखों पुत्रों का रक्त पी चुकी है वह अपने एक और पुत्र का रक्त पियेगी तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, सम्राट् !

राधा०—होश में आकर बातें करो कुमार !

कुमार—तुम्हें भी क्रोध आ गया महामात्य ! आखिर हो तो विष्णुगुप्त चाणक्य के शिष्य ही। लेकिन सुन लो राधागुप्त, तुम्हारे इस हत्यारे सम्राट् को एक दिन इस रक्त-प्लावन का बदला चुकाना होगा। उसका अपना हृदय उसकी भर्त्सना करेगा।

अशोक—(अट्टहास)...वही उपगुप्त का स्वर, वही बौद्ध-

भिक्षु की वाणी। बौद्धो की दुर्बल नीति के कारण ही तुम्हारा पतन हुआ है, बन्दी!

कुमार—मेरा पतन नही हुआ, अशोक! पतन तुम्हारा हुआ है।

अशोक—मेरा पतन! भारत-सम्राट् का पतन, असम्भव बन्दी, असम्भव

कुमार—असम्भव नही अशोक! वह पूर्ण सम्भव हो चुका है। लक्ष-लक्ष मानवो का रक्त तुम्हारे पतन की घोषणा कर रहा है; लक्ष-लक्ष घायलो की कराह मे तुम्हारे पतन का स्वर गूँज रहा है; ललनाओ की सूनी माँगो मे, माताओ की खाली गोदियों मे, शिशुओ की निरीह दृष्टि में, सब कही तुम्हारे पतन की कहानी अंकित है। कलिग के उजड़े हुए ग्राम, वीरान प्रदेश, ये सब तुम्हारे पतन के साक्षी है। अशोक, तुम जीतकर भी हार गए हो, कलिंग मिटकर अमर हो गया है।

अशोक—अशोक हार गया है, कलिग अमर हो गया है। (अट्टहास)

कुमार—हँस लो, जितना हँस सको हँस लो। मगध मे तुम्हें यह हँसी नही मिलेगी। वहाँ के मार्ग रक्त से रँगे पड़े है; वहाँ तुम्हारे सिहासन के चारो ओर लाशो के ढेर लगे हुए है; वहाँ तुम्हारे बन्दीघरो से लाखो बन्दियो की उठती हुई कराह ने सारे वातावरण को विषाक्त बना दिया है। अशोक, तुमने कलिग की धरती को जीता है उसकी आत्मा को नही। धरती की जीत को क्या तुम जीत कहते हो?

राधा०—जीत नही तो और क्या है? आत्मा को किसने देखा है? शरीर सत्य है, उसी की जय सच्ची जय है। कुमार, तुम्हारे इस शब्द-जाल से तुम्हारी पराजय जय में नहीं पलट सकती।

कुमार—मेरी पराजय ! मुझे किसने पराजित किया है ?

अशोक—क्या ? क्या तुम अपनी पराजय नही स्वीकार करते ?

कुमार—कलिग के कुमार के शरीर मे जब तक प्राण है तब तक उसे कोई पराजित नहीं कर सकता ।

अशोक—(तेजी से) तुम मुझे प्रणाम नही करोगे ?

कुमार—कलिग का कुमार कलिग के अतिरिक्त और किसी सिहासन के सामने झुकना नही जानता ।

अशोक—लेकिन कलिग का सिंहासन धूल में मिल चुका है । कलिग का स्वामी मै हूँ ।

कुमार—कलिग-कुमार के रहते कलिग का स्वामी कोई नहीं हो सकता, अशोक !

अशोक—होने का प्रश्न नही है, कलिग का राजमुकुट मेरी ठोकरो में लोट रहा है ।

कुमार—ठोकर लगाना तो बहुत दूर की बात है, उसकी ओर दृष्टि उठाने वाले की आँखे निकाल ली जाती है, सम्राट् !

राधा०—बस करो बन्दी, नही तो

कुमार—नहीं तो तुम्हारा सिर काट लिया जायगा । (अट्टहास). तुम लोगो मे सिर काट लेने से अधिक कुछ करने की शक्ति है ही कहाँ ? तुम कापुरुप हो ।

अशोक—महामात्य, बन्दी से कहो वह व्यर्थ का वितण्डा-वाद न उठाकर मेरी अधीनता स्वीकार करे । अशोक वीर पुरुषो को क्षमा करना जानता है ।

कुमार—लेकिन वीर पुरुप किसी की क्षमा ग्रहण करना नही जानते । विश्वास रखो, कलिंग-कुमार जीते-जी वीरता को कलंकित नही करेगा ।

अशोक—महामात्य, बन्दी से पूछो क्या यह उसका अन्तिम निर्णय है ?

कुमार—वीर दो बार नहीं सोचा करते।

अशोक—तब महामात्य, बन्दी को ले जाओ और चंडगिरि से कह दो, उषा की प्रथम किरण के साथ इसका सिर मेरे चरणों में लोटेगा।

राधा०—सम्राट् की आज्ञा का पालन होगा, देव !

कुमार—बस, यही तुम्हारी वीरता है; यही तुम्हारा शौर्य है ? इसी बूते पर सम्राट् बने हो। एक बन्दी का सिर भी नहीं झुका सके। खोपड़ियों को ठुकराने को तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं, लेकिन वह मानवों का मार्ग नहीं है।

राधा०—बस कुमार, सम्राट् को उपदेश देने की धृष्टता मत करो। सैनिक, बन्दी को ले चलो।

(सबका गमन। अशोक कुछ क्षण उन्हें जाते देखता है, फिर स्वगत बोलता है।)

अशोक—कितना धृष्ट है, मृत्यु जितनी समीप आती है, वाचालता उतनी ही बढ़ती है, साहस उतना ही सिर उठाता है, भय तो जैसे छू नहीं गया है। (हँसकर) लेकिन अशोक को किसने जीता है, अशोक की शक्ति से कौन बचा है ! सारा भारत चण्डाशोक, क्रूरकर्मी, बली पराक्रमी चण्डाशोक को जानता है। लेकिन वह कहता था—एक बन्दी का सिर नहीं झुका सके, खोपड़ियों को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान में घूमा करते हैं, नहीं नहीं यह सब उसका शब्द-जाल था, लेकिन.. लेकिन आहतों का चीत्कार बन्दियों की करुण पुकार हृदय में कहीं पीड़ा होती है, नेत्र मुँदे जाते हैं। ओह ! मुझे क्या हो रहा है, यह मुझे क्या .(संघमित्रा का प्रवेश)

संघमित्रा—सम्राट् की जय हो !

अशोक—(चौंककर) कौन ? सघमित्रा !

संघमित्रा—हाँ सम्राट् ! कुमार के भाग्य का निर्णय कर चुके ?

अशोक—(सँभलकर) तुम उस बन्दी की बात कर रही हो। अच्छा हुआ तुम्हारा विवाह उसके साथ नही हुआ। वह तो बडा धृष्ट निकला सघमित्रा ! उसने मेरी अधीनता स्वीकार नही की।

सघमित्रा—अधीनता को उसके पास रखा ही क्या है ! सारा देश श्मशान बन चुका है।

अशोक—तुम उसका देश देखने गई थी, सघमित्रा ?

सघमित्रा—जाना ही पड़ता है। आपके शूरवीर सैनिक घरो से निकाल-निकालकर कलिंग-निवासियो का वध करते थे।

अशोक—उन्हे यही आज्ञा थी।

संघमित्रा—सम्राट् के सैनिक आज्ञाकारी है, यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चो और औरतो को भी वे घर मे नही छोडते थे ! उन्हे बाहर निकालकर घरो मे आग लगा देते थे। इसलिए कलिग के कुमार ने गलती की जो श्मशान के लिए सिर दिया !

अशोक—तो तुम जानती हो कि मैने बन्दी का सिर काट लेने की आज्ञा दी है।

सघमित्रा—जानती तो नही थी, पर कल्पना कर सकती थी। बचपन से आपको पहचानती हूँ। राजगद्दी भी तो आपने बड़े भैया से सिर का सौदा करके जीती है, औरो की भाँति विरासत मे नही पाई। विरासत एक प्रकार का दान है और दान लेना वीरता का अपमान है।

अशोक—(सहसा धीमा स्वर) गद्दी की तो यहाँ कोई चर्चा नही थी, संघमित्रा !

सघमित्रा—गद्दी तो गौण है भैया, चर्चा आपके स्वभाव की है। कुमार को प्राण-दण्ड देकर आपने राज-सत्ता की ही नही,

अपने स्वभाव की मर्यादा की भी रक्षा की है।

अशोक—(तेज स्वर) स्वभाव की मर्यादा, सघमित्रा? अशोक शक्ति मे विश्वास रखता है। दया और करुणा को वह साम्राज्य का शत्रु मानता है। सुसीम पिता के राज्य-काल मे भी तक्षशिला का विद्रोह शात नही कर सका। वह बौद्धो की दुर्बल नीति का पक्षपाती था, वह मानवता की पुकार जैसी काल्पनिक भावनाओ मे विश्वास करता था।

सघमित्रा—नि सदेह बड़े भैया सम्राट् होने के लिए नही थे। गद्दी पर बैठते तो कैसे मौर्यो की पताका चारो दिशाओं मे फहराती, कैसे देश 'विजित' होते, कैसे धरती माता अपनी सतान का रक्त पीती, कैसे आकाश मानव-चीत्कार का संगीत सुनता?

अशोक—तुम जानती हो कि चीत्कार मे भी संगीत होता है।

संघमित्रा—होता है सम्राट्, उसी को सुनकर तो मनुष्य जीवन से डरना सीखता है।

अशोक—(हँसकर) तुम कैसी बातें कर रही हो संघमित्रा, जो जीवन से डरेगा वह जियेगा कैसे?

संघमित्रा—जैसे सम्राट् जीते है, जैसे सम्राट् के सैनिक जीते है।

अशोक—(धीरे से) जैसे सम्राट् जीते हैं, यानी जैसे मै जीता हूँ?

संघमित्रा—हॉ सम्राट्!

अशोक—संघमित्रा, तुम भी उन बौद्धो से हेल-मेल बढाने लगी हो, तभी यह रहस्यमयी भाषा बोलती हो। बन्दी भी कुछ इसी प्रकार कहता था।

संघमित्रा—बन्दी क्या कहता था सम्राट्?

अशोक—वह कहता था कि तुम कैसे वीर हो, जो एक बन्दी का सिर भी नही झुका सके। खोपड़ियो को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान मे घूमा करते है। (खोखली हँसी) यह सब वाग्जाल है। भुज-बल ही सबसे बड़ा शौर्य है। हृदय और आत्मा की बाते नारी और भिक्षुओ के लिए है।

सघमित्रा—(हँसकर) धन्यवाद भैया ! नारी को आपने भिक्षुओ के समकक्ष माना, लेकिन एक बात पूछूँ सम्राट् ?

अशोक—पूछो सघमित्रा ! बात पूछने का तो आज मेरा भी मन करता है।

सघमित्रा—सच ? तो आप ही पूछिये । मै तो सदा ही आपको तंग करती रहती हूँ। आप क्या पूछना चाहते है, सम्राट् ?

अशोक—कुछ नही, संघमित्रा !

संघमित्रा—(जोर देकर) पूछिये सम्राट् !

अशोक—पूछूँ ?

संघमित्रा—अगर मुझे किसी योग्य समझते हो तो पूछो।

अशोक—नही, नही, यह बात नही है। मै पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी का वध करने की कोई और रीति भी होती है ?

संघमित्रा—समझी नही सम्राट् ! और रीति से आपका क्या आशय है ?

अशोक—जिसका वध करना हो उसके प्राण न निकलें पर वह मर जाय।

संघमित्रा—ऐसी रीति नही भैया, मैं तो ऐसी रीति नही जानती। शस्त्र बाँधने वाला कोई जानता भी न होगा।

अशोक—अच्छा तो जाने दो लेकिन हाँ, संघमित्रा, शस्त्र बाँधना बुरा होता है क्या ?

संघमित्रा—नही तो, आपको अचानक यह क्या होने लगा ? आप ऐसे प्रश्न क्यो पूछते है ?

अशोक—(कॉपकर) न जाने न जाने (दृढ होकर) नही, नही, मुझे कुछ नही हुआ। ऐसे ही कुछ याद आ गया था। तुम किसी से कुछ कहना मत। हॉ, अब हम शीघ्र सिंहल-विजय के लिए चलेगे।

सघमित्रा—सच ?

अशोक—हॉ।

सघमित्रा—मै भी चलूॅगी।

अशोक—अवश्य चलना। वह बहुत सुन्दर देश है।

संघमित्रा—और हम सौन्दर्य के उपासक है, उसे चाट जाने वाले। (हॅसकर) अच्छा मै गायिका को बुला लाऊॅ, आप थक गए होगे।

अशोक—नही, नही। संघमित्रा, मै गाना सुनना नही चाहता। मै चाहता हूॅ मै चाहता हूॅ

संघमित्रा—(सहसा रुककर) सम्राट् क्या चाहते है ?

अशोक—कुछ नही संघमित्रा ! मै कुछ नही चाहता। लेकिन लेकिन मुझे कुछ याद आ रहा है। मुझे युद्ध-भूमि का दृश्य दिखाई दे रहा है। मुझे घायलो का चीत्कार सुनाई दे रहा है। मेरे कानो मे बन्दियो की करुण पुकार गूॅज रही है। (उत्तेजित हो जाता है।) संघमित्रा . संघमित्रा ! युद्ध मे इतने आदमी मरते क्यो है ? युद्ध होते क्यो है ?

संघमित्रा—भैया .. आपको क्या हो गया है ? आप अस्वस्थ है, आपका मन दुखी है, आपको संगीत की आवश्यकता है। मै अभी गायिका को भेजती हूॅ।

(सघमित्रा का गमन)

अशोक—(उसी तरह अनमना-सा) क्यों इतने आदमी मरते

है ? क्यो इतना रक्त बहता है ? सघमित्रा, बन्दी कहता था कि मैने धरती माता को अपने बेटो का रक्त पीने को विवश किया । अपने बेटो का रक्त ! क्या सघमित्रा, संघमित्रा (सँभलकर देखता है ।) गई महामात्य कहते थे, यह कलिग-कुमार की बड़ी प्रशंसा कर रही थी । वह है भी अनुपम वीर । उस दिन आखेट में उसका हस्तलाघव देखा था, आज इस महानाश मे उसका अदम्य साहस देखा । मै चाहता तो उसी क्षण उसका सिर काट लेता । लेकिन लेकिन, साहसी मनुष्य के सामने मौत भी कॉप जाती है । उसका साहस भी अगद के पैर के समान मेरे क्रोध के सामने डटा रहा । यही नही, उसने मुझे चुनौती भी दी, (स्वर गूँजता है ।) "बस एक बन्दी का सिर भी नही झुका सके । खोपड़ियो को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान मे घूमा करते है ।" मैं एक बन्दी का सिर नही झुका सका, एक बन्दी का, मै, जिसके इङ्गित पर लक्ष-लक्ष सिर पैर को चूमते है, जिसकी भृकुटि पर काल कॉप उठता है, वह एक सिर नही झुका सका । क्या सचमुच मै इतना निर्बल हूॅ ? क्या मेरी शक्ति कायर की शक्ति है ? कायर, हॉ । गीदड़ कायर ही होता है । कुमार ने मुझे गीदड़ कहा—खोपड़ियों को ठुकराने वाला गीदड़ ! मै खोपड़ियो को ठुकराता हूॅ, मै खोपड़ियो को ठुकराता हूॅ (गहरा उच्छ्वास) मै खोपड़ियो को ठुकराता हूॅ । ठीक तो है, मै इसका सिर नही झुका सका । संघमित्रा भी तो कहती थी, शौर्य तलवार मे नही होता शायद वह ठीक कहती है, तलवार मे शौर्य नही होता । तभी तो मै जीते-जी उसका सिर नही झुका सका । अब उसका सिर काटकर उससे बदला लेना चाहता हूॅ । सिर काटकर उसके सिर को ठुकराकर गीदड भी निर्जीव सिर को ठुकराता है, मै

गीदड़ हूँ । मै हाँ मै गीदड हूँ । मै एक बन्दी का सिर नही झुका सकता । (राधागुप्त का प्रवेश)

अशोक—(चौककर) कौन, महामात्य ?

राधा०—सम्राट् की जय हो, एक बौद्ध भिक्षु आपसे मिलना चाहते है ।

अशोक—(नम्र स्वर) बौद्ध भिक्षु को अभी रहने दो । मैं तुमसे पूछता हूँ, कुमार यही कहता था न कि मै एक बन्दी का भी सिर नही झुका सका ?

राधा०—देव, बन्दी का सिर कुछ ही घटो मे लोटेगा ।

अशोक—यही तो, वह यही तो कहता था । खोपडियो को ठुकराने के लिए तो गीदड़ भी श्मशान मे घूमा करते है । गीदड कायर होते है । आमात्य, कायर पुरुप को ही तो गीदड़ कहते है ।

राधा०—(धीरे से) सम्राट् , आपका चित्त ठीक नही है । आज क्या कोई गायिका नही आई ?

अशोक—राधागुप्त, संघमित्रा कहती थी, वीर पुरुप जिस संगीत को सुना करते है वह घायलो की चीत्कार और बन्दियों की करुण पुकार से उठता है । लेकिन महामात्य, मै तुमसे पूछ रहा था, क्या मै बन्दी का सिर नही झुका सकता ? क्या उसका सिर काटना ही होगा ?

राधा०—जो भारत सम्राट् की आज्ञा नही मानता, उसका सिर काट लेना ही उचित है ।

अशोक—लेकिन महामात्य, आज्ञा तो वह फिर भी नही मान सकेगा ।

राधा०—सम्राट् , यदि वह आज्ञा मानता, तो उसे दण्ड क्यों मिलता ?

अशोक—यही तो सघमित्रा कहती थी, तलवार मे शौर्य नही होता, वह हृदय मे होता है । क्यो महामात्य, तुम हृदय की शक्ति को जानते हो ?

राधा०—हृदय की शक्ति को नही जानता देव, पर सगीत की शक्ति को अवश्य जानता हूँ । मै अभी उसका प्रबन्ध करता हूँ । (जाता है, फिर रुकता है) ओह, मै भूल गया सम्राट्, द्वार पर एक भिक्षु खड़े है ।

अशोक—भिक्षु मुझसे मिलने आये है, इस समय ?

राधा०—सम्राट्, वह कलिग-कुमार से भेट करना चाहते है ।

अशोक—किस लिए ?

राधा०—शायद वे कुमार को ।

अशोक—(एकदम) शायद वह कुमार को मेरी अधीनता स्वीकार करने के लिए राजी करना चाहते है । (हसकर) महामात्य, जो काम मै नही कर सकता उसे शस्त्र कर सकते है, भिक्षु कर सकते है । यह कैसी विडम्बना है ? यह कैसी शक्ति है ? मै इतना दुर्बल हूँ फिर भी सम्राट् हूँ नही, नही, महामात्य, मै वह शक्ति चाहता जिसके द्वारा बन्दी का सिर झुका सकूँ । क्या वह शक्ति मुझे मिल सकती है ?

(महेन्द्र का प्रवेश)

महेन्द्र—अवश्य मिल सकती है, सम्राट् ! शर्त केवल इच्छा की है ।

अशोक—कौन ? महेन्द्र !

महेन्द्र—आज्ञा सम्राट् !

अशोक—सम्राट्, सम्राट् ? महेन्द्र, तुम भी मुझे सम्राट् कहोगे ?

महेन्द्र—जो आज तक कहता आया हूँ, उसको अचानक

बदल देने का कोई कारण दिखाई नही देता।

अशोक—ठीक है महेन्द्र, तुम ठीक कहते हो, परन्तु तुम नही जानते उस बन्दी कुमार ने मुझसे कहा था कि सबसे पहले हम साधारण पुरुष होते है। मै अशोक पहले हूँ, सम्राट पीछे।

महेन्द्र—(हँसकर) और सम्राट् ने उसकी बात मान ली।

अशोक—तब तो नही मानी थी, पर अब मुझे ऐसा लगता है जैसे मुझे कोई अशोक कहकर पुकारे।

महेन्द्र—सम्राट् आज कुछ दीन दिखाई दे रहे है। महामात्य, ऐसा क्यो है?

अशोक—महामात्य को कुछ पता नही, महेन्द्र! वह मेरी वाणी है। सच पूछो तो मुझको भी कुछ पता नही। मुझे उस बन्दी ने दया का पात्र बना दिया है। मेरा हृदय जल रहा है। मुझे लगता है जैसे मै अकेला हूँ, जैसे मै एक दुर्बल प्राणी हूँ।

महेन्द्र—भइया, यह तुम क्या कह रहे हो?

अशोक—भइया महेन्द्र, एक बार फिर कहो तो 'भइया'।

महेन्द्र—भइया!

राधा०—सम्राट्, भिक्षु के लिए क्या आज्ञा है?

अशोक—ओह भिक्षु! महामात्य, उनके आने से पहले मुझे यह बताओ क्या मै कुमार के दण्ड पर फिर से विचार कर सकता हूँ?

राधा०—सम्राट् सब-कुछ कर सकते है, परन्तु उन्हे अपने पद की मर्यादा को समझ लेना चाहिए।

अशोक—सम्राट् के पद की मर्यादा! तब तो महामात्य, मैं सम्राट् न हुआ, एक बन्दी हुआ।

(उपगुप्त का प्रवेश)

उपगुप्त—जब तक व्यक्ति अपने लिए जीता है, तब तक

वह बन्दी ही रहता है। आकांक्षा की परिधि सीमित होती है परन्तु उसकी प्यास बडी भयंकर होती है, सम्राट्! मकडी के जाले के समान उसमे फँसकर कोई जीवित नही रहा है।

अशोक—भिक्षु उपगुप्त, मै आपको प्रणाम करता हूँ, भन्ते!

उपगुप्त—सम्राट् का कल्याण हो, मै कलिग-कुमार से मिलना चाहता हूँ।

अशोक—महामात्य ने मुझे अभी बतलाया था, लेकिन मुझे लगता है कुमार से अधिक मुझे आपकी मंत्रणा की आवश्यकता है। अच्छा भन्ते, आप तो चिन्तन करते है। क्या कोई ऐसी शक्ति है जो बिना नाश किये विरोधी को पराजित कर सके?

उपगुप्त—किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है, सम्राट्?

अशोक—(दुहराता हुआ) किसी को पराजित करने की भावना ही मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

उपगुप्त—सम्राट्, रात बीत रही है।

अशोक—रात बीत रही है, सच क्या रात बीत रही है? भन्ते, आपने कितनी सुन्दर बात कही है! रात बीतती है, तभी प्रभात होता है।

उपगुप्त—लेकिन आज का प्रभात किसी की मृत्यु का सन्देश लेकर आ रहा है, सम्राट्!

अशोक—आप कलिग-कुमार की बात कर रहे है, भन्ते! वह मृत्यु और जीवन से परे है, मै उन्हे दण्ड देने की स्पर्धा नही कर सकता, वह स्वतन्त्र है। (सब चकित होते हैं।)

राधा०—सम्राट्!

अशोक—सुनो महामात्य, कलिग-कुमार मुक्त ही नही है, वह अपने राज्य के स्वामी है।

महेन्द्र—(अचरज से) भइया, क्या आप सच कह रहे है ?

उपगुप्त—सम्राट् , मै यह क्या सुन रहा हूँ ?

अशोक—जो कुछ आप सुन रहे है वह ठीक ही है, परन्तु ऐसा क्यो हो रहा है यह मै स्वय नही जानता। रह-रहकर कलिग-कुमार की बातें मुझे याद आ रही है, रह-रहकर रणभूमि का चित्र मेरे नयनो मे उभर आता है। रह-रहकर चीत्कार का सगीत मेरे कानो में गूँज उठता है। मै अब गीदड़ बनकर श्मशान मे खोपडियो को नही ठुकराना चाहता। मै मानव बनकर मानव को जीतना चाहता हूँ। (सब चकित पर प्रसन्न मुद्रा से अशोक को देखते है।)

महेन्द्र—भइया, आपने जो काम किया है वह मानव ही कर सकते है। आपकी जय हो। आइए आचार्य, हमे शीघ्र ही बन्दी-गृह मे जाकर कलिग-कुमार को यह शुभ समाचार देना चाहिए।

उपगुप्त—चलो महेन्द्र ! (महेन्द्र और उपगुप्त का गमन)

राधा०—लेकिन सम्राट् , सिहल-विजय का क्या होगा ?

अशोक—(हसता हुआ) सिहल-विजय अवश्य होगी, परन्तु कैसे होगी उस पर विचार करेंगे। अब तो मै कलिंग-कुमार से मिलना चाहता हूँ। देखो, सघमित्रा दिखाई दे तो उसे भी बुला लो, और तुम भी चलो।

राधा०—जो आज्ञा देव (राधागुप्त का गमन, सम्राट फिर घूमने लगते हैं। पदचाप उठते है और मिटते है। फिर प्रभात का सगीत उठता है। उसी के साथ कथा समाप्त होती है। परदा गिरता है।)

श्री भुवनेश्वर

ऊसर

श्री भुवनेश्वर

पात्र

लड़का
गृह-स्वामी
युवक—एक ट्यूटर
मोटी रमणी
गृह-स्वामिनी
छोटी लडकी
दो लडकियाँ

ऊसर

[एक मध्यवर्ग के बॅगले का ड्राइग-रूम छोटा और नीचा पटा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तसवीरें आज ही टॉगी गई हैं, जो कीलें गाड़ने के ताजे निशानो से मालूम होता है। दो दरवाजो और तीन खिड-कियो पर पर्दे पडे है। वे रोज ही पड़े रहते हैं, आज सिर्फ खिडकियो के पदो के नीचे की फटी हुई कोरें तुरप दी गई है। भीतर के दरवाजे पर जाली का कटा हुआ पर्दा है, जिसके लगाने के निशान मैले और पुराने है। कार्निस पर बहुत-सी तसवीरें और कुछ बड़े घोंघे और शख रखे है। एक 'प्लास्टर आव पेरिस' का गाधी का बस्ट भी है। फरनीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा और अक्सर बेमेल है—गहरी नीली सुइट पर दो हरे कुशन हैं, एक बरेली वुड-वर्क्स का भी सुइट है जिस पर रेशम से एक बडी बत्तख कटी हुई, काली बैक्स पड़ी है, कुछ बेंत की कुर्सियाँ है जो नगी हैं और भीतर के दरवाजे के सामने पडी है—ऐसी कि बिना उनको हटाए कोई भीतर से आ-जा नही सकता। बाहर का ताजा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखाई देता है, जहाँ पायदान पर एक भूरा पेकनीज़ दहलीज पर सिर रखे सो रहा है और किरमिच की कुर्सी पर एक युवक हाथो को जगलो में भींचे टाँगें हिलाता हुआ, पोर्च मे खड़ी बड़ी गीली कार की तरफ बड़ी देर से—करीब-करीब जब से वह लाल सुर्खी को दलती हुई और अपने बेलुन टायरो से छोटी-छोटी ककड़ियाँ उड़ाती हुई आयी है—देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढी हो चली है।

सहसा भीतर के दरवाजे से एक आठ बरस का लड़का त्यौहारी कपड़े पहने एक कुर्सी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और युवक दोनों

चौक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्राकर फिर सिर टिका देता है और युवक तनिक अपराधी-सा मोटर से नजर हटा लेता है। लडका सीधा कुत्ते के पास जाता है, उसका एक पेर का मोजा सरककर नीचे आ गया है, जिससे उसकी सफेद बेराठी पिडली दिखाई दे रही है।]

लड़का—(कुत्ते को जूते से सहलाते और अंगुली चटाते हुए) मेरा पिप्पा! तुम्हे कोई नही पूछता, तुम यहाँ अकेले पडे हो, मेरा बू—बी! (वही बैठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँख बन्द किए कान और दुम हिलाता है।) तुम मैले हो देखो चुपके से जब सब सो जायँ, तो तुम हमारे बिस्तर पर आ जाना, हम-तुम तो भाई-भाई हैं। हम तुम, ह ह (कुत्ते को उठाता-सा है)।

(भीतर वाले दरवाजे से कुर्सियो को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृह-स्वामी का हठ है। वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है, पर उसका करा इस्तरी किया सूट, खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते है। लडका कुत्ते को एकबारगी छोड़कर कमरे मे आ जाता है, पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टाँगों से चिपककर खेलने लगता है।)

गृहस्वामी—(दियासलाई से दाँत कुरेदते हुए) यह क्या बदतमीजी है? भीतर मेहमान आये है, तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो। (कुर्सियाँ देखते हुए) और ये सब कुर्सियाँ क्यो बरबाद कर दी

लड़का—(चट से) कुर्सी? कहाँ—? ये तो आपने हटाई है।

गृहस्वामी—(खिड़की के बाहर थूककर) और अंग्रेजी तो आप सब भूल गए, अब कभी मेहमान आएँ तो आप अपने ट्यूटर के साथ .

(थूकता है। लड़का बाहर की ओर देखता है और युवक, जो गृह-स्वामी के आते ही उठकर खम्भे के सहारे खड़ा हो गया था, भीतर की तरफ धीरे-धीरे बढता है।)

गृहस्वामी—(युवक से) तुम कहाँ गये थे ? मै कहता हूँ कि जब रात को तुम्हे पढना हुआ करे तो शाम को साइकिल-बाजी न किया कीजिये। (थूकता है) भाईजान, इसमे आप ही का फायदा है।

युवक—(चुप है, जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा।)

गृहस्वामी—और तुम भीतर आ सकते थे (सहसा) और तुमने चाय कहाँ पी ?

युवक—जी नहीं।

[गृहस्वामी जैसे इस जवाब से असन्तुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ से फिरकर एक कुर्सी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर अनजाने खिसककर लड़के के पास आना चाहता है। लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ बिना देखे टाँगो से खेल रहा है।]

ट्यूटर—आज तो मिसेज सिबल अच्छी है ?

गृहस्वामी—(जैसे उसने मिसेज सिबल का अपमान किया हो।) क्या अच्छी है ? ज़रा-सी पार्टी पर आप देखिये हफ्ते-भर स्ट्रेण्ड हार्ट से पड़ी रहेंगी। अब उन लोगो को घूम-घूमकर मकान और बाग़ दिखाया जा रहा है। फिर हम लोगो की

ट्यूटर—मै आज आपसे सुबह से कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिजी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायँगे

गृहस्वामी—(एकटक उसकी तरफ देखता है, जैसे यह कोई बडा बेहूदा सवाल है।)

ट्यूटर—मै सोचता हूँ कि यह इण्टेलेक्चुअल एक्सपेरी-मेंटर का जीवन जो मै.

(कुत्ता चीख पडता है, शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है।)

ट्यूटर एक छोटी घोड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।)

गृहस्वामी—देखो जी (लड़का कुत्ता बगल मे दबाकर भीतर भाग जाता है।)

गृहस्वामी—(ट्यूटर के बोलने का इन्तजार करके) मै इस भीड-भड़क्के से बहुत भड़कता हूँ और औरतो को तुम नही जानते। जब बाहर के आदमी होगे तो बिलकुल दूसरी ही हो जायँगी और अपने पति से भी यही उम्मीद करेगी। मैने आपके टेबल पर फिंगर बोल, मैने सुनी भी न थी पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थी जैसे हम लोग हफ्ते मे दस दिन फिगर बोल बरतते है—हुँ ह

(ट्यूटर के हॅसने का इन्तजार करता है।)

और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टॉग दिया तो हर एक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा जैसे वह कोई क्यूबिज्म का डिजाइन हो।

ट्यूटर—(गम्भीरता से) अब तो मिसेज सिबल अच्छी है पहले से।

गृहस्वामी—अच्छी क्या है! (रुककर) उम्र का तकाजा है। अब देखो बाईस साल की मैरिड लाइफ में (रुक जाता है जैसे ट्यूटर से ये बातें नही की जा सकती।)

ट्यूटर—(नीची नजर, हाथ से हाथ दबाये) मै आपसे कुछ कहना चाहता था मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गए .

गृहस्वामी—(बाहर की आवाजों को सुनते हुए) मै सब समझ सकता हूँ। यह आपकी मेहरबानी है, पर मै मजबूर हूँ। आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च। मै कतई मजबूर हूँ। मदरासी मेम २५) पर तैयार थी। मुझे कहना न चाहिए, मैने सिर्फ आपकी इमदाद की गरज से, समझे, यह इन्तजाम किया था।

ट्यूटर—मुझे अफसोस है।

गृहस्वामी—(कुछ समझ नही पाता) तो तुम बाइसिकल पर कहाँ-कहाँ गये थे ?

ट्यूटर—मै बाइसिकल पर कही नही गया, मै गया ही नही (एकबारगी रुक जाता है।)

(सन्नाटा हो जाता है। पर यह साफ है कि किसी का बोलना जरूरी है।)

गृहस्वामी—(टाँग हिलाते हुए) मेरा जिन्दगी का एटीट्यूड बिलकुल मुख्तलिफ है। तुम अपने सोशलिज्म-ओशलिज्म के जोश मे शायद यह समझ बैठे हो कि जिन्दगी का गहरा-से-गहरा मतलब तुम्हारे लिए साफ हो गया जैसे कोई बड़ा सर-कश घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया, पर जिन्दगी अगर इस तरह लटको और फारमूलो मे बाँधी जा सकती तो आज तक कब की खत्म हो जाती। जी साहब सोशलिस्ट है पर आज जो कुछ भी हम 'कुत्तो' के समाज से आप इन्सानो को मिला है हम वापस ले ले—

(ट्यूटर साफ है कि इन बातो को निरर्थक समझता है।)

हॉ हमारे स्कूलो, यूनिवर्सिटियो की तालीम, हमारी लाइब्रेरियॉ, हमारे बाजार, हमारे .

ट्यूटर—(उठकर बाहर खिड़की की तरफ झॉकता है। गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है।)

गृहस्वामी—क्या वे आ रहे है ?

ट्यूटर—(चुपचाप बाहर झॉक रहा है।)

गृहस्वामी—यह कैसी पार्टी है ! (टहलता हुआ) आम लोग वाकई (फिर बैठ जाता है।) मै कहता हूँ कि आने वाली जेनरेशन चाहे वह बिल्लियो की हो या सर्पो की, हमसे अच्छी होगी। हमसे ....

ट्यूटर—(मुस्कराता है) वे शायद पीछे से पार्क मे चले गए।

गृहस्वामी—(चौककर) पार्क मे ! और कुसुम की तबियत स्ट्रेण्ड हार्ट, कैफिया स्परीन मैने एक किताब पढी थी, उसमें हमारी सभ्यता, तहजीब की तसवीह एक बडी दुकान से दी गई थी—ऊपर, ऊपर, ऊपर—चढ़े चले जाइये; पर नीचे जमीन की आँते हमे हजम करने के लिए बेताब है। वाकई आने वाला जेनरेशन—पर मै कहता हूँ कि कोई जेनरेशन आता नही। यही जमीन की आँतें जब बजाय हजम करने के कै कर देती है

(भीतर कुछ आवाजें सुनाई देती है। गृहस्वामी सहसा ट्यूटर की तरफ कड़ाई से देखता है। ट्यूटर उस नजर को बचाकर चुपचाप बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाजे से एक मोटी अधेड रमणी भारी बनारसी साडी पहने, एक जरा दुबली रमणी महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियाँ दोनो नीली साड़ियाँ पहने, एक युवक अचकन चूड़ीदार पाजामे मे आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते है, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं, जैसे जवान लड़कियाँ आपस मे हँसती हैं जब एक-दूसरे का कोई साहसपूर्ण भेद जानती है।)

मोटी रमणी—(पास की कुर्सी पर बेठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद बेठिये कहता है।) हम लोग पार्क में चले गये थे। (हाँफकर) आपका डिनोमाइट भी हमने देखा। (हँस पड़ते है।)

गृहस्वामी—(जबरन हँसी मे शामिल होकर) कैसा डिनोमाइट ?'

(युवक ने उन लड़कियो को बैठा दिया हे। सफेद धोती वाली भी, जो गृहस्वामिनी है, बैठ जाती है। उसके बैठ जाने पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है, सिर्फ युवक खड़ा रहता है।)

मोटी रमणी—आपका डिनोमाइट। (फिर हँसी होती है।)

गृहस्वामी—(गम्भीर होकर) खैर, यह तो मजाक है पर यह मैं मानता हूँ, मेरा यकीन है कि दुनिया के सब गोले-बारूद एक आदमी की मर्जी से चाहे वह हजारो मील दूर बैठा हो, फट सकते है।

(अब की वह खुद हँसी शुरू करता है ।)

गृहस्वामिनी—यह योग वोग बहुत जानते थे, अब सब बेचारे भूल गए ।

(फिर हँसी होती है, पर पहले से कुछ धीमी ।)

युवक—पापा का यह ख्याल चाहे मजाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमे ऐसी ताकत पैदा करनी होगी ।

गृहस्वामी—(हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यो ? और ऐसी ताकत मौजूद है, अगर हजरत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचाएगी तो वह ताकत काम मे लाई जायगी । बेचारा गाधी क्या कहता है

युवक—गांधी तो सठिया गया है ।

(लड़कियाँ आपस मे धीमी हसी हसती है ।)

मोटी रमणी—मै तो वह कुछ जानती नही । लेकिन हॉ, अभी विक्टोरिया-सी कोई मलका हो जाय तब फिर ठीक हो जाय । दुनिया पर यह तबाही विक्टोरिया के मरने के बाद आई ।

युवक—विक्टोरिया क्या करेगी ?

मोटी रमणी—तुम्हारा तो कही पता भी न था तब । विक्टोरिया के ही राज मे तो सुख था ।

गृहस्वामी—खैर लडाई-भिडाई की तो बात छोड़िये । मै आपको एक किस्सा सुनाता हूँ

गृहस्वामी—क्या हम लोग यही बैठे रहेगे ? कही घूम आये ।

गृहस्वामी—खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कही ।

युवक—(लडकियो के पास ही कुर्सी खिसकाकर बैठ जाता है । बड़ी लडकी उसकी तरफ देखकर लाज से सिमट जाती है ।) हॉ तो आपका वह किस्सा

गृहस्वामी—वह कुछ नही, लखनऊ मे जब हिन्दू-मुसल-

मानो का दगा हुआ तो हम लोग आगा तुराब के हाते के पास एक बॅगले मे रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन ही चार घर मुसलमानो के थे। खैर, हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानो के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानो की बस्ती मे चले जायँ या हम लोग हिन्दुओ की। जब वहाँ गये तो मालूम हुआ कि वे लोग खुद हमसे डरे हुए है और लाठियाँ लिये अपने सामान और बीवी-बच्चे लिये जा रहे है। हाँ उसी तरह यूरोप मे सब एक-दूसरे से

गृहस्वामिनी—बेबी क्या घूमने गया है ?

युवक—(अवाक्-सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे ?

(सब अपनी घड़ियाँ देखते हैं।)

छोटी लडकी—(धीरे से) अब साढ़े सात बजे है।

गृहस्वामिनी—रिकार्ड सुनियेगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नही।

युवक—(ओठ दबाकर) कोई गाना ही गाइये।

(लड़कियाँ, खासकर बड़ी, शरमाती-सी है।)

गृहस्वामी—हाँ बेटियो, गाओ न ?

मोटी रमणी—आप गाइये, इन बेचारियो को क्या आता है ?

गृहस्वामी—ओहो, तो आप ही गाइये।

(सब हँस पडते हैं और फिर एकबारगी सन्नाटा छा जाता है।)

मोटी रमणी—(युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का किस्सा सुनाओ।

युवक—(ऊबा-सा) विलायत का किस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

करना चाहते है, पर नही कर सकते; और मै आपसे पूछता हूँ (एकबारगी युवक की ओर देखकर नजर हटा लेता है।) वह बगावत किसके खिलाफ है ? आप नेचर से वैर कर सकते है ? नही कर सकते। आप छत से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताकत आपका सिर फटने से नही रोक सकती (एक बार धीमा पड़कर) तुम उन्हे समझा देना

गृहस्वामिनी—मुझे तो आपकी बात पसन्द आई कि विक्टोरिया जैसी मलका कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बाते फिर लौट आएँ।

मोटी रमणी—(गर्व से तनकर) लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा तो ईश्वर है

गृहस्वामी—खैर, मै तो यह नही मानता

युवक—(ऊबा-सा) आइये कुछ खेले

गृहस्वामी—ताश से तो मुझे नफरत है, बिलकुल छिछोरा खेल है।

गृहस्वामिनी—फिर क्या खेले, तुम्हीं बताओ ?

मोटी रमणी—मै एक खेल बताती हूँ, हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वगैरा (सब लोग उसकी तरफ गौर से देख रहे हैं।) एक आदमी, जैसे मै, कुछ चीजो के नाम लूँ, जैसे कमरा—

छोटी लड़की—(चटक आवज मे) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एक-एक कागज़ और पेंसिल ले ले और कुछ लोग नही। एक आदमी बिना सोचे कई चीजो के नाम ले, जैसे 'कमरा' और सब लोग उस लफ्ज को सुनकर एकदम जो उनके मन मे आये अपने कागज़ पर लिख लें, फिर सबके कागज़ पढ़े जायँ।

युवक—क्या खेल है ? (अपने को सँभालकर) यह तो अच्छी-खासी साइकोलोजिकल स्टडी है।

गृहस्वामिनी—(उत्साह से) मै कागज लाती हूँ ।

(भीतर जाती है और जरा देर मे चिट्ठी लिखने का पैड, दो कलम और कुछ पेंसिलें लेकर आती है । लड़कियाँ इस बीच आपस मे कुछ फुसफुसाती है । गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है ।)

गृहस्वामिनी—लीजिए ।

(युवक पैड लेकर सबको कागज दे देता है । दोनो लडकियाँ कागज लेती है और फिर रख देती हैं । मोटी रमणी भी कागज ले लेती है पर फौरन कहती है—)

मोटी रमणी—मै—मै तो नाम लूँगी ।

गृहस्वामिनी—(कागज लेती हुई) अरे कागज ! लाओ बेटी !

(लडकियाँ झेंपती हुई कागज उठा लेती है और दो पेंसिलें ले लेती है । युवक अपना फाउण्टेन पेन निकालकर गृहस्वामिनी (अपनी माता) को दे देता हे और खाली हाथ खडा है ।)

मोटी रमणी—तुम भी कागज़ ले लो, राजाजी !

युवक—मै तो नाम लूँगा ।

मोटी रमणी—(पेंसिल उठाते हुए) अच्छा ।

युवक—(सबको तैयार देखकर) अच्छा मै क्या कहूँ ? (हँसता है ।) अच्छा 'कमरा' (सब लिखते है)

युवक—अच्छा, 'बिजली' । (फिर सब लिखते है ।)

युवक—अच्छा-अच्छा 'पेरम्बुलेटर' । (फिर सब लिखते हैं ।)

युवक—अच्छा अब क्या—अच्छा, 'सेक्स' ।

गृहस्वामी
मोटी रमणी } —सेक्स !!

युवक—हाँ, हाँ !

गृहस्वामी—क्यो, सेक्स ?

युवक—यह भी लफ्ज़ है । आपने कहा था बिना सोचे नाम लो ।

(सब लिखते हैं ।)

युवक—अच्छा बस ।

(सबसे पहले लड़कियाँ अपने कागज मेज पर रखती है। सबमे बाद मे गृहस्वामिनी ।)

मोटी रमणी—(कागज उठाती हुई) मै पढ़ूँगी (कागज उलटती-पलटती है ।) सबसे पहले मिस्टर सिबल का पर्चा है ।

(पर्चा उठाकर, सब गौर से सुन रहे है ।)

मकान—'जिम्मेदारी', ठीक ! बिजली, क्या लिखा है, हाँ—दिमाग ? बिलकुल ठीक, दिमाग ने ही तो ऐसी चीजे निकाली है। पेरम्बुलेटर—'शादी' वाह-वाह; मिस्टर सिबल ! (गृहस्वामी भद्दा झेंपता है) अच्छा सेक्स—'साइंस', बहुत खूब । अब किसका कागज़ है, मिसेज सिबल का ?

गृहस्वामिनी—मेरा सबसे बाद में पढियेगा ।

मोटी रमणी—नही, बाद मे क्यो ? सभी के तो पढ़े जायेंगे, तो सुनिए ।

गृहस्वामिनी—मेरा बाद में पढियेगा ।

गृहस्वामी—पढने न दो कुसुम !

मोटी रमणी—अच्छा कमरा—'बाथरूम' ।

गृहस्वामी—बाथरूम, बाथरूम क्यो ?

युवक—खैर, यह भी तो कमरा है ।

गृहस्वामिनी—अच्छा ।

मोटी रमणी—बिजली—'अँधेरा' ।

गृहस्वामी—है ?

गृहस्वामिनी—बिजली फेल हो जाती है तो मोमबत्तियां नही ढूंढ़नी पड़ती है ?

गृहस्वामी—कुसुम, यह क्या है ? बेबी क्या पेरम्बुलेटर पर

चढ़ने के काबिल है ? मै कहे देता हूँ, तुम लड़को का सत्यानाश मारे देती हो।

गृहस्वामिनी—मैने तो बेबी लिखा था। अपना बेबी थोड़ी ! तुम्ही ने कहा था बिना सोचे।

मोटी रमणी—अच्छा सेक्स—'शाहनजफ रोड'।

गृहस्वामी—यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी—(अपराधिनी-सी) तुमने कहा बिना सोचे

गृहस्वामी—तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी—कुछ नही, मैने वैसे ही लिख दिया।

गृहस्वामी—वैसे ही ? सेक्स—'शाहनजफ रोड'। वाह-वाह !

युवक—पापा, यह तो खेल है। अच्छा अब अगला पढ़िए।

गृहस्वामी—नही, इसे साफ हो जाने दीजिए। सेक्स, 'शाह-नजफ रोड' वाह-वाह ! (उठकर) इसके माने क्या है ?

युवक—पापा, यह तो खेल है।

(मोटी रमणी सब कागज रख देती है। लड़कियाँ अपना कागज़ उठा लेती है। युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है।)

युवक—मै कहता था

गृहस्वामी—कमरा—'बाथरूम', सेक्स—'शाहनजफ रोड'। क्या कहना है !

(सब लोग चुपचाप गम्भीर बैठे है, केवल युवक कुछ व्यग्र है। पाँच ही मिनट बाद जरा-सा परदा खिसकाकर भीतर से नौकर कहता है—मेज लगाऊँ, हुजूर ?)

गृहस्वामिनी—हाँ-हाँ। (तेजी से उठकर भीतर चली जाती है। भीतर से उसकी आवाज सुन पड़ती है—बेबी आ गया ? नहीं आया अभी ?)

[मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती है। युवक और गृहस्वामी रह जाते है। दो मिनट बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला

जाता है। युवक व्यग्र, बरामदे की तरफ, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनो कमरे मे लौट आते है।]

ट्यूटर—(अपराधी-सा) मै अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था।

युवक—आप क्या यही बैठे थे ?

ट्यूटर—जी हॉ।

युवक—यही बरामदे मे ?

ट्यूटर—जी हॉ।

युवक—हूँ (टहलता है। ट्यूटर हर जगह अपनी किताब खोजता है।)

युवक—आज पापा से आपकी बातचीत हुई ?

ट्यूटर—जी हॉ।

युवक—क्या बातचीत हुई ?

ट्यूटर—कुछ नही, उन्होने कहा कि आने वाली जेनरेशन चाहे बिल्लियो की हो या सॉपो की, पर हमसे अच्छी होगी।

युवक—(चौककर और ट्यूटर के पास आकर) किसने कहा ?

ट्यूटर—मिस्टर सिबल ने।

(युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है और वह कुरसी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकालकर सुलगाता है।)

टिप्पणी

एकांकी नाटक

इसमे सन्देह नही कि आधुनिक एकाकी नाटक अपने विषय-वस्तु, रूप-विधान और शैली के कारण कला का एक स्वतन्त्र रूप बन गए हैं। लक्षण-ग्रन्थो मे दिये गए विविध नाटक-भेदो मे किसी के अन्तर्गत आधुनिक एकाकी को रखना सभव नही है, इसलिए कुछ लोगो की यह धारणा है कि आज के यन्त्रयुग की तीव्र गतिशीलता और अवकाशहीन व्यस्तता के परिणामस्वरूप ही एकाकियो का जन्म हुआ है। मुक्तक, गीति, कहानी, एकाकी, रेखाचित्र, गद्यकाव्य—साहित्य के इन लघु रूपो का इतना सीधा सम्बन्ध आज के द्रुतगामी जीवन से जोड़ना या इन्हे आधुनिक समाज का प्रतिनिधि रूप-विधान सिद्ध करना आशिक रूप से ही सत्य कहा जा सकता है। क्योंकि यदि देखा जाय तो वास्तव मे उपन्यास ही इस युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है जिसमे आज का जटिल द्वन्द्वपूर्ण सामाजिक जीवन समग्र रूप से प्रतिबिम्बित होता हे। देश और काल की परिस्थितियों से विषय-वस्तु की ही तरह कला के रूप-विधान भी प्रभावित होते हैं, परन्तु ये प्रभाव एकपक्षीय नही होते, न केवल मात्र परिस्थितिजन्य ही होते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि समाज और साहित्य के इतिहास की परम्पराओ से भी हर नया विकास प्रभावित रहता है। आज के एकाकी नाटक का रूप तो आधुनिक है लेकिन यह कहना गलत होगा कि वह सर्वथा नया है और प्राचीन नाट्य-परम्परा से उसके सूत्र नहीं जोड़े जा सकते।

प्राचीन लक्षण-ग्रन्थो मे रूपक और उपरूपको के जो भेद गिनाये गये हैं उनमे से भाण, व्यायोग, अक, वीथी और प्रहसन—ये पाँच एकाकी रूपक-प्रकार हैं। इन एकाकी रूपको की अंग्रेजी के कर्टेन रेजर (Curtain Raiser) या आफ्टर पीसेज़ (After Pieces) से तुलना नहीं की जा

सकती, क्योंकि कर्टेन रेजर या आफ्टर पीसेज़ १८ वीं-१६ वी शताब्दी के इगलिस्तान मे मुख्य नाटक के प्रारम्भ होने से पहले या बाद मे दर्शको का समय काटने के लिए दिखाए जाते थे। उनका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न होता था और वे अधिकतर भाण और प्रहसन से मिलते-जुलते थे। इसलिए प्राचीन एकाकियों की यदि किसी से तुलना की जा सकती है तो प्राचीन ग्रीस और प्राचीन इटली के लघु प्रहसनो से, जो स्वतन्त्र रूप से विकसित हुए थे। हिन्दी के आधुनिक एकाकी नाटको का सम्बन्ध हम सस्कृत के प्राचीन रूपको से जोड़ सकते है। यद्यपि आधुनिक एकाकी विषय-वस्तु और कला की दृष्टि से प्राचीन एकाकी रूपकों से बहुत आगे विकास कर आया है, फिर भी इस सम्बन्ध मे यह याद रखना चाहिए कि हिन्दी मे नाटको की परम्परा का सूत्रपात करने वाले भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने जो एकाकी लिखे उनमे से 'विषस्य विषमौषधम्' भाण रूपक है, 'धनजय विजय' व्यायोग की कोटि मे आता हे, 'अन्धेर नगरी' तथा 'वैदिकी हिंसा हिसा न भवति' प्रहसन है और 'भारत-दुर्दशा' एक रूपक है। इनके पश्चात् श्रीनिवासदास, प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि अनेक लेखको ने एकाकी लिखे, जिन्हे रूपको मे ही परिगणित किया जाता हे। आधुनिक एकाकी से इन रूपको का शैली-भेद अवश्य है, परन्तु उन्हे हम रूपक कहकर, आधुनिक एकाकियो को उनकी परम्परा और उनके वर्ग से अलग नही कर सकते। क्योंकि भारतेन्दु-कालीन एकांकियो की विषय-वस्तु अपने सामयिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन से ली गई थी, यह तथ्य उन्हे आधुनिक जीवन की परम्परा का प्रतिनिधि बना देता हे। अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दुयुगीन एकाकी आधुनिक एकाकियों के प्रारम्भिक रूप हैं। उनमे कला का वह विकसित रूप नहीं मिलता जो हमारे नये एकाकी-लेखकों की कला मे विकसित हो रहा है।

हिन्दी के आधुनिक एकाकियों में हमे कला-सम्बन्धी जिस मौलिक नवीनता के दर्शन होते हैं वह एक बड़ी सीमा तक पाश्चात्य नाटककारो की कला

से प्रभावित है और यह स्वाभाविक भी था कि इब्सन और बर्नार्ड शा जैसे इस युग के विश्ववद्य कलाकारों का क्रातिकारी प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ता। उनके नाटकों ने हिन्दी के अधिकाश नाटककारों और एकाकी-लेखकों को अपनी प्रतिभा का विकास करने मे योग दिया है। हमारे नाटककारों की विषय-वस्तु चाहे ऐतिहासिक या पौराणिक हो अथवा वर्तमान जीवन के व्यक्तिगत या सामाजिक सघर्षों से सम्बन्ध रखती हो, उसे नाटक रूप देने मे वह जिस कलात्मक क्षमता का परिचय देते हैं, उसका सस्कार एक बडी सीमा तक पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव से हुआ है।

एकाकी नाटक-साहित्य का एक रूप-विधान है। यह कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि एकाकी नाटक का ढाँचा और उसकी प्रकृति अर्थात् उसके मूल तत्व साधारण नाटक से भिन्न है। उपन्यास और कहानी मे जो अन्तर है, बहुत कुछ वैसा ही अन्तर एक नाटक और एकाकी मे होता है। जिस तरह एक कहानी को और लम्बा करके उपन्यास नहीं बनाया जा सकता, उसी तरह एकाकी को भी बढाकर तीन अकों का पूरा नाटक नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि यह भिन्नता केवल उनके दीर्घ और लघु आकारों पर ही आधारित नहीं है।

एकाकी नाटक केवल एक ही प्रधान नाटकीय घटना को उपस्थित करता है और उसका उद्देश्य एक ही अमिश्रित प्रभाव उत्पन्न करना होता है। दुःखान्त और सुखान्त नाटकों की शैलियों से लेकर भाण और प्रहसन तक की शैलियाँ इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए प्रयोग मे लाई जाती हैं। परन्तु एकाकी नाटक की सफलता के लिए वस्तु का सगठन इतने कलात्मक लाघव से करने की आवश्यकता होती है कि उसमे कथा और चरित्र के विकास से लिए गौण परिस्थितियों की योजना, वर्णन-बहुलता, विषयान्तरता आदि का कोई स्थान नहीं होता। आवश्यकता इस बात की होती है कि पर्दा उठते ही दर्शक का ध्यान खींच लिया जाय और अन्त तक उसे केन्द्रित रखा जाय। इसी कारण एकाकी नाटक मे कथा-वस्तु की योजना का संयोजन और संवादों की सीधी चुभन और मितव्ययता

की ओर विशेष ध्यान देना होता है।

डा० रामकुमार वर्मा ने 'पृथ्वीराज की आँखें' नामक एकाकी-सग्रह मे एकाकी की व्याख्या इस प्रकार की है :

"एकाकी नाटको मे अन्य प्रकार के नाटको से विशेषता होती है। उसमे एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा (क्लाईमैक्स) तक पहुँचती है। उसमे कोई अप्रधान प्रसग नही रहता। विस्तार के अभाव मे प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमे लता की भाँति फैलने की विशृङ्खलता नही।"

नाटक की कथा-वस्तु अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओ के घात-प्रतिघात से जिस प्रकार विषम परिस्थितियो की अवतारणा करती हुई चरम सीमा तक पहुँचती है, उससे एकाकी नाटक की कथा-वस्तु के विकास की भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए डा० सत्येन्द्र ने लिखा है ·

" . किन्तु एकाकी नाटक मे साधारण नाटक से भिन्नता होती है। उसके कथानक का रूप तब हमारे सामने आता है जब आधी से अधिक घटना बीत चुकी होती है। इसलिए उसके प्रारम्भिक वाक्य मे ही कौतूहल और जिज्ञासा की अपरिमित शक्ति भरी रहती है। बीती हुई घटनाओं की व्यजना चुम्बक की भाँति हृदय आकर्षित करती है। कथानक क्षिप्र गति से आगे बढता है और एक-एक भावना घटना को घनीभूत करते हुए गूढ कौतूहल के साथ चरम सीमा मे चमक उठती है। समस्त जीवन एक घण्टे के सघर्ष मे और वर्षों की घटनाएँ एक आँसू या एक मुस्कान में उभर आती हैं, वे चाहे सुखान्त हों या दुःखान्त।" (हिन्दी एकाकी, पृ० १२४)

अधिकतर विद्वानो का मत है कि प्राचीन यूनानी नाटको मे स्थल, काल और कार्य की एकता पर जो जोर दिया जाता था उस नियम का निर्वाह साधारण नाटक मे चाहे न हो, लेकिन एकाकी मे अवश्य होना चाहिए। इस

नियम को सकलनत्रय (Three Unities) कहते हैं। स्थल की एकता (Unity of Place) अर्थात् घटनाएँ एक ही स्थान से सम्बन्ध रखती हों, काल की एकता (Unity of Time) अर्थात् नाटक की घटनाएँ एक ही समय की हो और कार्य की एकता (Unity of Action) अर्थात् कृत्य मे एकसूत्रता और एकाग्रता हो। इस सम्बन्ध मे मतभेद हो सकता है और यह केवल बहस का विषय नही है। एक सफल एकाकी की रचना मे अनेक तत्वो का समावेश होता है, जिनका कलात्मक परिपाक लेखक की कल्पना मे होना आवश्यक है। प्रतिभाशाली लेखक विषय-वस्तु की आन्तरिक आवश्यकता के अनुकूल किसी तत्व को अधिक उभार सकता है और किसी की अवहेलना भी कर सकता है, जैसा कि हिन्दी के अनेक सफल एकाकियो से प्रमाणित है।

एकाकी नाटक की कला पर विचार करते समय हमे उसके दो आवश्यक तत्वो पर ध्यान रखना चाहिए। पहला है नाटकीय सघर्ष और दूसरा है चरित्र-चित्रण।

सघर्ष ही नाटक की आत्मा है। यह सघर्ष अन्तर और बाह्य—दोनो प्रकार का हो सकता है और जिस प्रकार समाज मे उसी प्रकार नाटक मे शत-शत रूपों मे व्यक्त हो सकता हे। बाह्य सघर्ष दो या अनेक व्यक्तियो के बीच या व्यक्ति और समाज के बीच, या व्यक्ति और 'दैव' या 'नियति' के बीच हो सकता हे। आन्तरिक सघर्ष पात्र की चेतना मे अपने ही स्वभाव के विरुद्ध होता है, अथवा जब बाह्य परिस्थितियाँ हृदय के भावों में एक टक्कर पैदा कर देती हैं, जब कर्त्तव्य और प्रेम मे से एक को चुनना अनिवार्य हो जाता है या जब नाटक के पात्र की नैतिक भावना उसकी महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति के मार्ग मे अवरोध बनती हे तब ये नाटकीय परिस्थितियाँ पात्रों के मन मे आन्तरिक सघर्ष को जन्म देती हैं।

नाटकीय संघर्ष वास्तव में हमारे सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की असंगतियो और अन्तर्विरोधो को ही कलात्मक ढंग से प्रतिबिम्बित करता है। समाज और व्यक्ति या व्यक्ति और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धो के

वैषम्य से जो असगति और अन्तर्विरोध पैदा होता है नाटक मे उसे अधिक मार्मिक तथा प्रभावकारी ढङ्ग से उपस्थित किया जाता है। यह सघर्ष सामाजिक या व्यक्तिगत जीवन की जितनी ही व्यापक या मूलभूत समस्याओ से उत्पन्न होगा नाटक की विषय-वस्तु उतनी ही अधिक सार्वजनिक, सार्थक और महत्त्वपूर्ण होगी।

कहा जाता है कि 'कोई भी नाटक चरित्र-चित्रण के धरातल मे ऊँचा नहीं उठ सकता।' उदाहरण के लिए 'प्रहसन' या 'भाण' देखकर हम एक क्षण के लिए आनन्दित हो सकते हैं, लेकिन उसका प्रभाव स्थायी नहीं रहता—जैसे कोई चमत्कारपूर्ण उक्ति सुनकर निमिष-मात्र के लिए मुग्ध हो जायँ। कारण स्पष्ट है कि उनके पात्रो का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक और गहरा नहीं होता, बल्कि उनमे सत्य को विकृत करके उपस्थित किया जाता है। किसी भी वर्ग की नाटकीय रचना में चरित्र-चित्रण का आत्यन्तिक महत्व है। नाटक के विभिन्न पात्रो का चरित्र एक दूसरे से भिन्न होना जरूरी है; यह भिन्नता उन पात्रो के एक-दूसरे के प्रति आचरण-व्यवहार और रगमञ्च पर जो घटित हो रहा हो उसके प्रति उनकी भाव-प्रतिक्रियाओं, मुद्राओं, सम्भाषण के ढंग और कार्यों से प्रकट की जाती है। यह आवश्यक है कि पात्रों की मानसिक प्रतिक्रियाएँ और उनके कार्यों में अनुकूल परस्परता और गहराई हो अर्थात् वे जीवन-वास्तव का प्रतिनिधित्व करते हों। जिस तरह वास्तविक मनुष्य के चरित्र में एकसूत्रता होती है और अकारण ही वह अकस्मात् अपने स्वभाव के विपरीत कार्य नहीं करता, उसी प्रकार नाटकीय पात्रो के चरित्र का विकास या परिवर्तन भी सकारण और परिस्थितिवश ही हो सकता है। उन कारणो और विशेष परिस्थितियो का चित्रण नाटक मे आवश्यक है, अन्यथा दर्शक को पात्र कृत्रिम और असामाजिक प्राणी लगेंगे। नाटकीय पात्र वास्तविक मानव-प्राणी होने चाहिएँ और उनके कृत्य भी मानवीय हों, ताकि दर्शक उनके हर्ष-विमर्ष, सुख-दुःख मे अपनी पूरी सहानुभूति से दिलचस्पी ले सके।

कथोपकथन (संवाद) चरित्र के निर्माण और विकास मे योग देता है।

कथोपकथन सच्चिप्त मर्मस्पर्शी, वाक्‌वैदग्ध्ययुक्त चरित्र की चारित्रिकता को प्रकट करने वाला तथा एकाकी के सूत्र को आगे बढाने वाला होना चाहिए। एकाकी का कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए। स्वाभाविक का अर्थ यह नही है कि वादविवाद की तरह कार्य-कारण पद्धति का अनुसरण करे, अर्थात् क से ख और ख से ग औरग से घ की मजिलो को एक सीधी रेखा मे पार करता हुआ आगे बढे। स्वाभाविकता का अर्थ है कि उससे वास्तविक जीवन का भ्रम होने लगे, वास्तविक जीवन के वातावरण की सृष्टि हो जाय और कथोपकथन पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ को प्रकाशित कर दे। स्वाभाविकता की व्याख्या करते हुए एक अग्रेज विचारक ने कहा है कि एकाकी का कथोपकथन क से ग से च से ज से ख से ग से ह से च से ट से य से प आदि—इस प्रकार पीछे मुड़-कर पलटता हुआ, छलॉग मारकर आगे बढता हुआ, मुख्य विचारो को दुहराता हुआ और उन पर ठहरकर उनकी व्याख्या करता हुआ और कभी-कभी ऐसे विचारो को भी सवाद मे घसीट लेता हुआ हो जो यद्यपि कथा-वस्तु के लिए प्रत्यक्षतः प्रसगत नही हैं, लेकिन जो वातावरण, चरित्र और यथार्थ जीवन की सृष्टि करने मे योग देते हैं। स्वाभाविकता का अर्थ वास्तविक जीवन के वार्तालाप को ज्यों-का-त्यों रंगमंच पर उपस्थित करना नही है। कला वास्तविक जीवन का फोटो-चित्र नही होती। कला वास्तविक जीवन से प्राप्त सामग्री मे से चुनाव करती है, जो अनावश्यक है उसे अस्वीकार कर देती है और फिर उसे नये ढग से सगठित करके वास्तविक जीवन के सार्थक और सम्भाव्य चित्र का निर्माण करती है, जो वास्तविक जीवन से अधिक वास्तविक, सुन्दर और प्रयोजन-शील हो जाता है और मनुष्य की चेतना और वृत्तियों को अधिकम नवीय और सामाजिक बनाता है।

नाटक में चरम सीमा का महत्त्व आत्यन्तिक होता है। चरम सीमा नाटकीय घटना के विकास की उस स्थिति को कहते है जब जटिल घटनाओं का घात-प्रतिघात दर्शक में भावों का तीव्र उद्रेक कर दे और जब दर्शक का

कौतूहल और औत्सुक्य अपने अन्तिम बिन्दु तक पहुँच गया हो। चरम सीमा पर पहुँचते ही बाह्य या आन्तरिक संघर्ष का उद्‌घाटन और समाधान एक आत्मिक आघात की तरह होता है और सारे संघर्ष को जैसे आलोकित कर देता है। चरम सीमा पर पहुँचकर नाटक समाप्त हो जाता है क्योंकि उसका उद्देश्य पूरा हो चुकता है।

हिन्दी के एकांकी

हिन्दी मे एकांकियों की जिस परम्परा का प्रारम्भ भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने किया था वह अपने विकास की कई मंजिलों को पार कर आई और हिन्दी के आधुनिक नाटकों मे अब हमे निश्चय ही कला का विकसित रूप दिखाई देता है। भारतेन्दुकालीन नाटकों का संक्षेप मे हम उल्लेख कर चुके है। इन नाटकों की कला पर संस्कृत के नाटकों का विशेष प्रभाव था, यद्यपि बंगाली नाटकों के माध्यम से पाश्चात्य शैली का प्रभाव भी इन पर पड़ने लगा था।

उस काल के नाटकों के विषय सामाजिक जीवन से लिये गए थे। इस प्रकार वे हमारे राष्ट्रीय जागरण की प्रारम्भिक चेतना को प्रतिबिम्बित करते है और हिन्दी के आधुनिक एकांकी के प्राथमिक रूप कहे जा सकते हैं।

हिन्दी एकांकियों का प्रथम काल सन् १८७३ से लेकर, जब भारतेन्दु ने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' लिखा, सन् १६२६ तक मानना चाहिए जब प्रसाद जी ने अपने 'एक घूँट' एकांकी की रचना की। वास्तव मे 'एक घूँट' मे ही आकर एकांकी नाटक की आधुनिक शैली का भरपूर निखार होता है, जिसके कारण डॉ० नगेन्द्र तथा अनेक दूसरे समालोचक उसे हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हैं। इसमे सन्देह नहीं कि 'एक घूँट' के बाद एकांकी-लेखन की परम्परा बहुत तेजी से आगे बढी और पिछले बीस-बाईस वर्ष मे अनेक प्रतिभाशाली एकांकीकार हमारे साहित्य मे पैदा हुए।

प्रसाद जी के बाद यों तो सूर्यकरण पारीख, सुदर्शन, जैनेन्द्रकुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पं० गोविन्दवल्लभ पंत आदि अनेक लेखकों ने एकांकी लिखे, लेकिन शैली और कला की शिथिलता के कारण साहित्य में

अपना विशेष स्थान नही बना पाए। लेकिन इस बीच पाश्चात्य नाटक-कारो, विशेषकर बर्नार्ड शॉ से प्रभावित भुवनेश्वर और एकाकी की टेकनीक के मर्मज्ञ डा० रामकुमार वर्मा आदि एकाकीकार उत्कृष्ट कला का विकास कर रहे थे। बाद को श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' और दूसरे अनेक एकाकी लेखक भी इस क्षेत्र मे आये जिनमे से महत्त्वपूर्ण कई लेखको के एकाकी इस सग्रह मे संकलित किये गये हैं। इस पुस्तक मे लेखको के नाटक ऐतिहासिक क्रम से नहीं दिये गए है, लेकिन यहाँ उनका परिचय यथा-सम्भव ऐतिहासिक क्रम से दे रहे है।

नाटक और उनके लेखक

भुवनेश्वर

भुवनेश्वरप्रसाद के छः एकांकियो का सग्रह 'कारवाँ' सन् १६३५ मे प्रकाशित हुआ था। इन नाटको पर बर्नार्ड शॉ के भाव-विचारो का गहरा प्रभाव है। यद्यपि पाश्चात्य विचार-प्रणाली का उनमे इतना गहरा रग मिलता है फिर भी ये नाटक जब प्रकाशित हुए उस समय हिन्दी-ससार ने उनका हिन्दी-साहित्य मे उत्साहपूर्वक स्वागत किया। इसका एक कारण यह भी था कि हमारे मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की खोखली नैतिकता और मिथ्या आडम्बर का निर्ममतापूर्वक इन नाटको मे उद्घाटन किया गया है, जो दर्शक और पाठक को अपने जीवन की वास्तविकता के प्रति झकझोरकर जागरूक कर देते है। भुवनेश्वर बर्नार्ड शॉ की अन्तर्भेदी दृष्टि का अपने अन्दर विकास करके भारतीय जीवन और भारतीय मानस को अपने अनुभव से ढालकर मौलिक नही बना पाए, जिससे नाटको में मौलिकता की अपेक्षा अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दी। आजकल सम्भवतः उनका लिखना बन्द-सा हो गया है।

'ऊसर' उनका सर्वश्रेष्ठ एकाकी माना जाता है। इसमे पाश्चात्य सभ्यता से आक्रान्त आडम्बरपूर्ण उच्च मध्य-वर्ग के खोखले जीवन का चित्र मिलता है जो अहकारग्रस्त और निपट हृदयहीन है, अर्थात् 'ऊसर' के समान है।

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकाकी नाटको का पहला सग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' सन् १६३६ मे निकला। इसके बाद उनके 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'सप्तकिरण', 'विभूति', 'चार ऐतिहासिक एकाकी' और 'कौमुदी महोत्सव'

आदि एकाकी-सग्रह प्रकाशित हुए है। वर्माजी के नाटको का क्षेत्र ऐतिहासिक और सामाजिक दोनो है। उनकी प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक सघर्षों का सूक्ष्म चित्रण करने की ओर है। इसमे सन्देह नहीं कि वर्माजी एक श्रेष्ठ एकाकी नाटककार है और हिन्दी मे एकाकी नाटक को श्रेष्ठ कलात्मक रूप देने मे उनका सबसे बड़ा योग है। उनके अधिकाश नाटक दुःखान्त होते है और इसी कारण गहरा प्रभाव डालते है।

'सम्राट् विक्रमादित्य,' जैसा नाम से ही ज्ञात है, एक ऐतिहासिक एकाकी है। इसमें विक्रम सवत् का आरम्भ किन नाटकीय परिस्थितियो मे हुआ, इसका चित्रण किया गया है। इससे अधिक हमे इस नाटक द्वारा विक्रमादित्य-कालीन आर्य और शक जाति के पारस्परिक सघर्ष की भी झलक मिलती है। इस सघर्ष मे शक जाति परास्त हुई और विक्रमादित्य के न्यायविधान मे बिना आर्यत्व स्वीकार किए किसी शक को साधारण नागरिक का-सा स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं दिखाई देता। नाटक मे विक्रमादित्य के उदात्त चरित्र को और भी गौरवान्वित किया गया है, लेकिन छद्मवेशी शककुमार भूमक का चरित्र भी किसी प्रकार कम उदात्त नहीं है, यद्यपि तत्कालीन न्याय-व्यवस्था के अनुसार उसे अपना धर्म-त्याग करना पड़ा।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' एक प्रतिभाशाली एकाकी नाटककार हैं। इनका सबसे पहला नाटक-सग्रह 'देवताओ की छाया मे' सन् ३८ में प्रकाशित हुआ था। उस समय से 'चरवाहे', 'तूफान से पहले', 'कैद और उड़ान' आदि अन्य सग्रह प्रकाशित हुए। अश्क जी ने दु खान्त और सुखान्त दोनों प्रकार के सामाजिक और राजनीतिक एकाकी-नाटको की रचना की है। हास्य और व्यग्य-लेखन मे वह सिद्धहस्त हैं। साथ ही गम्भीर मनोवैज्ञानिक सघर्ष का चित्रण करने मे भी वह कम सफल नहीं हुए हैं। 'अश्क' जी वर्तमान जीवन के वैषम्य पर तीखे व्यग्य करते हैं जिससे उनकी विद्रोही चेतना के दर्शन होते है। उनका प्रस्तुत नाटक 'अधिकार

का रक्षक' उनके प्रारम्भिक नाटको मे से है । इस व्यग्य-नाटक मे उन्होंने अधिकार-प्राप्त वर्ग के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की दुरगी नैतिकता का अत्यन्त सजीव और यथार्थ चित्रण किया है ।दलित और शोषित वर्ग के प्रति सत्ताधारी वर्ग की मौखिक सहानुभूति और ऊँचे-ऊँचे आदर्शों के मन्त्रोच्चार का खोखलापन नाटक के वास्तविक दीन-दुखी पात्रों के प्रति उनके आचरण-व्यवहार से मूर्तित हो जाता हे ।

उदयशकर भट्ट

प्रसिद्ध नाटककार उदयशकर भट्ट का प्रथम एकाकी नाटक-सग्रह अभिनव एकाकी नाटक' नाम मे सन् १६४० मे प्रकाशित हुआ था । तब से अब तक 'आदिमयुग', 'समस्या का अन्त,' 'धूमशिखा' और 'स्त्री का हृदय' आदि एकाकी-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । भट्ट जी के एकाकी नाटक अधिकतर सामाजिक हैं, यद्यपि पौराणिक विषयो पर भी उन्होंने कई एकाकी लिखे हैं । उनके नाटको मे मन का अतरद्वन्द्व स्वाभाविक रूप से विकसित होता है और अधिकतर उनके एकाकी दु.खान्त होते हैं । सामाजिक वैषम्य का यह विषादान्त चित्रण मर्म को छू लेता हे ।

प्रस्तुत नाटक मे भट्ट जी ने बड़ी व्यग्यपूर्ण कोमलता से सामन्ती वर्ग-व्यवस्था के ह्रास और उसकी नैतिकता के रूढ़ आडम्बर का चित्रण किया है, जो सामाजिक रूप से उपयोगी कार्य से अलग एक उपजीवी अभिजात्य पर आधारित है ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्र जी हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारो मे से हैं । इधर कुछ दिनो से उन्होंने एकाकी नाटक लिखने शुरू किए हैं और उनके पाँच ऐतिहासिक एकाकियों का सग्रह 'अशोक बन' के नाम से प्रकाशित हुआ है । मिश्र जी के नाटकों की शैली अत्यन्त स्वाभाविक और सूक्ष्म हे । उनके ऐतिहासिक नाटकों की भाषा अन्य नाटककारो को तरह जान-बूझकर कृत्रिम रूप से सस्कृत-गर्भित नहीं बनाई गई होती । इसी कारण उनके नाटकों की भाषा में प्रसाद गुण अधिक है ।

प्रस्तुत नाटक में रामायण से अशोक वन वाली कथा को लेकर मिश्र जी ने उसे एक नये ही ढग से प्रस्तुत किया है। इसमें लेखक ने अपनी आधुनिक नैतिक चेतना को प्रक्षिप्त करके अशोक वन की घटना की एक नई झाँकी हमारे सामने प्रस्तुत की है। रावण जानकी का मन वश मे करने के लिए अशोक वन मे जाता है, परन्तु अकेले नही, अपनी रानियो के साथ। परन्तु सीता के ओजस्वी व्यक्तित्व, उनकी उदात्त नैतिक भावनाओ और विवेकपूर्ण कर्त्तव्य-निष्ठा के सामने परास्त हो जाता है।

जगदीशचन्द्र माथुर

श्री जगदीशचन्द्र माथुर एक प्रतिभाशाली एकांकी नाटककार है। उनका पहला एकांकी 'भोर का तारा' सन् १६३७ मे लगभग विद्यार्थी अवस्था मे ही लिखा गया था और प्रयाग विश्वविद्यालय में कई बार अभिनीत हुआ था। इसी नाटक के नाम से उनके एकांकियों का प्रथम संग्रह प्रकाशित हुआ था। उसके बाद और कोई सग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है, यद्यपि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं मे उनके एकांकी यदा-कदा छपते रहते हैं। श्री माथुर की सचेत दृष्टि आधुनिक जीवन के उस वैषम्य के आर-पार देखती है जो रूढिग्रस्त सस्कारो और नई सामाजिक प्रवृत्तियों के बीच एक जटिल और अविराम सघर्ष का जनक है। इसी कारण उनके नाटकों मे एक प्रबुद्ध कलाकर के सयम के साथ अमानवीय, मानव-स्वाभिमान को चोट पहुँचनेवाली जर्जर मान्यताओं और लोकाचारो पर निर्मम प्रहार रहता है। प्रस्तुत एकांकी मे श्री माथुर ने हमारे समाज के ऐसे ही एक वैषम्य को कलात्मक ढग से चित्रित किया है। नवोत्थित मध्यवर्ग पढ़-लिखकर रूप का सौदा करता है, अर्थात् विवाह के लिए लड़की देखने की एक प्रथा चल निकलती है। यह प्रथा कितनी हृदयहीन है—इसके पीछे छिपी नैतिक भावना कितनी क्रूर और स्त्री जाति के लिए अपमानजनक है, इसका तीखा अनुभव कराना ही 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का उद्देश्य है और लेखक इसमें पूर्णतया सफल हुआ है।

विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर ने इधर अनेक एकाकी नाटक लिखे हैं। आपका पहला एकाकी-सग्रह 'इन्सान' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् उनका दूसरा सग्रह 'क्या वह दोषी था' भी प्रकाशित हुआ। इसमे चार एकाकी नाटक है और चार रेडियो-रूपक हैं। श्री विष्णु प्रभाकर के सामाजिक नाटको की एक विशेषता यह है कि वे वर्तमान समाज-व्यवस्था के ह्रास और आडम्बर का व्यग्यपूर्ण चित्र उपस्थित करते समय पात्रो की मानसिक प्रतिक्रियाओ का सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण करते हैं और उन पात्रो के आडम्बर और रूढिग्रस्त स्वभाव के भीतर छिपी सहज मानवता को उद्घाटित कर देते है। उनके ऐतिहासिक नाटको में भी चरित्र-चित्रण और अन्तर्बाह्य द्वन्द्व का उद्देश्य मानव-आदर्शों और मूल्यो का उद्घाटन करना होता है। विष्णु जी इस सोद्देश्यता का आरोपण बाहर से नहीं करते, बल्कि नाटकीय घटनाएँ स्वयं स्वाभाविक रीति से इस सोद्देश्यता को व्यक्त करती चलती हैं।

प्रस्तुत ऐतिहासिक एकाकी में कलिग-विजय के बाद अशोक के मानसिक परिवर्तन की कहानी को चित्रित किया गया है। कलिग-विजय से पूर्व अशोक का शक्ति और हिसा द्वारा साम्राज्य-विस्तार मे विश्वास था। लेकिन कलिंग-विजय के बाद बन्दी कलिग-कुमार के स्वाभिमान को अपनी तलवार की शक्ति से न जीत पाने पर और कलिग-कुमार की अजेय मानवीय दृढ़ता के प्रभाव से अशोक का मानसिक परिवर्तन होता है और वह शक्ति को छोड़कर अहिंसा और मानवता में विश्वास करने लगता है।